# पूर्वांचल खेती

वर्ष : 33 जुलाई 2023 अंक : 07

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

# पूर्वांचल खेती

**प्रसार निदेशालय**

**आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय**

**कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)**

# पूर्वांचल खेती

वर्ष 33 | जुलाई 2023 | अंक 07



**संरक्षक**

**डॉ. बिजेन्द्र सिंह**

कुलपति

**प्रधान सम्पादक**

**डॉ. आर. आर. सिंह**

अपर निदेशक प्रसार

**तकनीकी सम्पादक**

**डॉ. अनिल कुमार**

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

**सम्पादक मण्डल**

**डॉ. वी. पी. चौधरी**

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

**डॉ. पंकज कुमार**

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

**सम्पादक**

**उमेश पाठक**

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है


## विषय सूची


**संडा पद्धतिः जलवायु परिवर्तन में कृषकों हेतु वरदान** 01
शशांक शेखर एवं जे. पी. सिंह

**तुलसी की वैज्ञानिक खेती एवं प्रसंस्करण** 04
आलोक कुमार एवं लवकुश पाण्डेय

**धान की फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं उनका निदान** 05
प्रवेश कुमार एवं शेषनारायण

**उत्तर प्रदेश में मसालों की खेती एवं मसालों का औषधीय महत्व** 07
मनोज कुमार एवं एस पी सिंह

**मिलेट्स (श्री अन्न):एक जलवायु–स्मार्ट फसल के रूप में** 10
रूपन रघुवंशी एवं रिंकी कुमारी चौहान

**धान में लगने वाले कीट–रोग की पहचान एवं उनका नियंत्रण** 12
हिमांशु शेखर सिंह, वी. पी. सिंह एवं डा. सौरभ वर्मा

**हाइड्रोपोनिक्स : मिट्टी के बिना पौधे उगाने की तकनीक** 14
संदीप कुमार पाण्डेय, प्रमोद कुमार मिश्र एवं डी. के. सिंह

**फलों में ग्राफ्टिंग द्वारा प्रसारण** 19
रितेष सिंह एवं आलोक कुमार

**शुद्धगन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पाद** 22
पीयूष गुप्ता, अनिल कुमार एवं आशीष कुमार वर्मा

**मत्स्य आहार भंडारण एवं गुणवत्ता** 24
ज्ञानदीप गुप्ता एवं एल. सी. वर्मा

**स्वस्थ पशु–अधिक दुग्ध उत्पादन का आधार** 26
एस0एन0 सिंह एवं ओ०पी० वर्मा

**जुलाई माह में किसान भाई क्या करें** 25

**प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के** 26



**प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या**

## विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

| क्र. सं. | कृषि विज्ञान केन्द्र | वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/प्रभारी अधिकारी | दूरभाष कार्यालय | मोबाइल |
|---|---|---|---|---|
| 1. | वाराणसी | डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी | 05542–248019 | 9415687643 |
| 2. | बस्ती | डॉ. एस.एन. सिंह | 05498–258201 | 9450547719 |
| 3 | बलिया | डॉ. संजीत कुमार | – | 9837839411 |
| 4. | फैजाबाद | डॉ. विनायक शाही | 05278–254522 | 8755011086 |
| 5. | मऊ | डॉ. वी.के. सिंह | 0547–2536240 | 8005362591 |
| 6. | चंदौली | डॉ. एस. पी. सिंह | 0541–2260595 | 9458362153 |
| 7. | बहराइच | डॉ. के.एम. सिंह | 05252–236650 | 9307015439 |
| 8. | गोरखपुर | डॉ. सतीश कुमार तोमर | – | 9415155518 |
| 9. | आज़मगढ़ | डॉ. डी.के. सिंह | – | 9456137020 |
| 10. | बाराबंकी | डॉ. शैलेश कुमार सिंह | – | 9455501727 |
| 11. | महाराजगंज | डॉ. डी. पी. सिंह | – | 7839325836 |
| 12. | जौनपुर | डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया | – | 9984369526 |
| 13. | सिद्धार्थनगर | डॉ. ओम प्रकाश | 05541–241047 | 9452489954 |
| 14. | सोनभद्र | डॉ. पी. के. सिंह | – | 9415450175 |
| 15. | बलरामपुर | डॉ. एस. के. वर्मा | – | 9450885913 |
| 16. | अम्बेडकरनगर | डॉ. रामजीत | – | 9918622745 |
| 17. | संतकबीरनगर | डॉ. अरविन्द सिंह | – | 9415039117 |
| 18. | अमेठी | डॉ. रतन कुमार आनन्द | – | 9838952621 |
| 19. | बहराइच (नानपारा) | डॉ. शशिकान्त यादव | – | 9415188020 |
| 20. | मनकापुर–गोण्डा | डॉ. पी.के. मिश्रा प्रभारी | – | 9936645112 |
| 21. | बरासिन–सुल्तानपुर | डॉ. वी.पी. सिंह | – | 9839420165 |
| 22. | अमिहित–जौनपुर | डॉ. आर.के. सिंह | – | 9452990600 |
| 23. | गाजीपुर | डॉ. आर. सी. वर्मा | – | 9411320383 |
| 24. | श्रावस्ती | डॉ. विनय कुमार | – | – |
| 25. | आजमगढ़ द्वितीय | डॉ. एल.सी. वर्मा | – | 7376163318 |

## विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

| क्र.सं. | कृषि विज्ञान केन्द्र | प्रभारी अधिकारी/ | मोबाइल | दूरभाष कार्यालय |
|---|---|---|---|---|
| 1. | अमेठी | डॉ. आर. आर. सिंह | 9450938866 | – |
| 2. | गोण्डा | डॉ. आर. आर. सिंह | 9450938866 | – |
| 3. | देवरिया | डॉ. आर. आर. सिंह | 9450938866 | – |
| 4. | गाजीपुर | डॉ. आर. आर. सिंह | 9450938866 | – |

## विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

| क्र.सं. | कृषि अनुसंधान केन्द्र | प्रभारी अधिकारी/ | मोबाइल | दूरभाष कार्यालय |
|---|---|---|---|---|
| 1. | मसौधा, फैजाबाद | डॉ. डी. के. द्विवेदी | 7706884188 | 05278–254153 |
| 2. | तिसुही, मिर्जापुर | डॉ. पी. के. सिंह | 9415450175 | 05442–284263 |
| 3. | बसुली, महाराजगंज | डॉ. डी. पी. सिंह | 9451430507 | – |
| 4. | घाघरा घाट, बहराइच | डॉ. महेन्द्र सिंह | 9026289336 | 0525–235205 |
| 5. | बड़ा बाग, गाजीपुर | डॉ. सी. पी. सिंह | 9628631637 | – |
| 6. | बहराइच | डॉ. महेन्द्र सिंह | 8787289358 | 0548–223690 |

**डॉ. आर. आर. सिंह**
**अपर निदेशक प्रसार**

**आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय**
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

# सम्पादकीय

जलवायु परिवर्तन का सबसे व्यापक प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पड़ा है। बदलती मौसम परिस्थितियों में कृषि उत्पादकता बनाये रखना साथ ही खाद्यान की भविष्य की मांग को पूरा करने की चुनौतियाँ हमारे कृषि वैज्ञानिकों व कृषक भाईयों के सामने हैं। ऐसे समय में समयानुकूल कृषि फसल प्रबन्धन करके तथा प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग से ही इस समस्या से बाहर निकल सकते हैं। पत्रिका के इस अंक में खरीफ फसलों के वैज्ञानिक प्रबन्धन के साथ–साथ कृषि की अत्याधुनिक तकनीकों पर आधारित लेख प्रस्तुत है।

आशा है कि पत्रिका का यह अंक हमारे किसान भाईयों, प्रसार कार्यकर्ताओं, पशुपालकों आदि के लिये उपयोगी सिऋ होगा।

**(आर.आर. सिंह)**

# संडा पद्धतिः जलवायु परिवर्तन में कृषकों हेतु वरदान

शशांक शेखर एवं जे. पी. सिंह

**चा**वल दुनिया की लगभग आधी आबादी का मुख्य भोजन है, विशेष रूप से एशियाई देश जैसे भारत, चीन, बांग्लादेश, आदि देशों में मुख्य भोजन के रूप में उपभोग किया जाता है। आम तौर पर, एशिया में धान की खेती बड़े पैमाने पर परम्परागत विधि जैसे यादृच्छिक रोपाई (बिना किसी उचित अंतराल के), लाईन रोपाई (उचित दूरी के साथ) और डबल रोपाई (संडा) से की जाती है। कई देशो में बारिश काफी देर से होने के कारण खरीफ की खेती थोड़ी विलम्ब से हो रही है, और साथ ही धान की नर्सरी देर से डाले जाने के कारण धान की रोपाई भी देर से हो रही है, इससे खरीफ की उपज प्रभावित होने की सम्भावनायें प्रबल होती हैं। इसलिए इन देशों में डबल ट्रांसप्लांटिंग विधि बहुत ही लाभदायक है। यह धान की खेती की एक बहुत पुरानी विधि है, जिसका प्रयोग बाढ़ प्रभावित, तराई क्षेत्रों या विलंबित वर्षा क्षेत्रों (थोड़ा सूखा) में किया जाता है। यह पद्धति ज्यादातर पूर्वी उत्तर प्रदेश के जनपदों गाजीपुर, वाराणसी, मऊ, बलिया, चंदौली, आदि, एवं मेघालय, बिहार, पश्चिम बंगाल, असम, और झारखण्ड में बहुत प्रचलित है। डबल ट्रांसप्लांटिंग को उत्तर प्रदेश में संडा एवं कलम विधि, मेघालय में चंगगिनी गेनी, बिहार में खरोन्हा,असम में बल्लन के नाम से भी जाना जाता है। संडा विधि न केवल बाढ़ या विलंबित वर्षा क्षेत्रो (सूखा क्षेत्र) के जोखिम को कम करता है, बल्कि यह अन्य पारंपरिक विधि की तुलना में फसल की वृद्धि और उपज को भी बढ़ाता है। संडा विधि के तहत धान की रोपाई मिट्टी की अनुकूल नमी या खेत में पानी की गहराई के कारण जुलाई से अगस्त के प्रथम सप्ताह के बीच में किया जा सकता है। अगर धान के पौध में पोषक तत्वों की कमी, रोग संक्रमण (जैसे ब्राउन स्पॉट और लीफ ब्लास्ट), वर्षा में ज्यादा विलम्ब होना आदि परस्थिति के कारण नर्सरी 2–3 महीने से ज्यादा की हो जाती है तो संडा विधि से रोपाई संभव नहीं है।

## फसल प्रबंधन

संडा विधि के अन्तर्गत फसल प्रबंधन अन्य पारंपरिक धान प्रबंधन (तालिका 1) से अलग होता है। इस विधि में अन्य पारंपरिक विधि की तुलना में 33–42 प्रतिशत कम बीज की आवश्यकता पड़ती है। नर्सरी तैयार करने के लिए सबसे पहले, बीज को रात भर भिगोने के बाद प्राथमिक नर्सरी में फैलाया जाता है। बीज को नर्सरी में डालने से पूर्व 8 किग्रा/हेक्टेयर नाइट्रोजन, 4 किग्रा/हेक्टेयर फॉस्फोरस और पोटैशियम को मिट्टी में मिला देना चाहिए है, 24–26 दिनों के बाद दूसरी नर्सरी में 5–10 सेंमी की दूरी पर प्रथम रोपाई की जाती है। इसके बाद दूसरी रोपाई तब की जाती है जब भारी वर्षा होने की संभावना कम होती है या देरी से वर्षा होने वाली होती है। प्रथम रोपाई के 21–28 दिनों के बाद द्वितीय रोपाई खेत में 20 सेमी गुणा 20 सेमी की दूरी पर किया जाता है। अंतिम रोपाई के दौरान प्राथमिक और द्वितीयक नर्सरी क्षेत्र में भी प्रत्यारोपण किया जाता है, इससे कोई भी भूमि बर्बाद नहीं होती है। अंतिम जुताई से पहले खेत में पोटैशियम (60 किग्रा/हेक्टेयर) और फॉस्फोरस (50 किग्रा/हेक्टेयर) की अनुशंसित मात्रा बेसल खुराक के रूप में डाला जाता है। जबकि नाइट्रोजन की अनुशंसित मात्रा (120 किग्रा/हेक्टेयर) को तीन भागों में; प्रथम (25 प्रतिशत) बेसल खुराक के रूप में, दूसरा (50 प्रतिशत) कल्ले निकलने पर और तीसरा (25 प्रतिशत) पुष्पावस्था शुरू होने से पहले डाला जाता है। बेहतर फसल वृद्धि के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम उर्वरक का अनुपात 2:1:1 होना चाहिये। यह सच है, दो बार रोपाई के कारण संडा विधि, श्रम/लागत को थोड़ा बढ़ा देता है लेकिन लागत में वृद्धि की भरपाई बीज दर की कम मात्रा, सिंचाई की संख्या में कमी, खरपतवार न होना और अधिक पैदावार से होती है।

कृषि विज्ञान केंद्र, आकुंशपुर गाजीपुर, आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

### प्रजाति का चयन

कम (90 दिन) और मध्यम (120 दिन) अवधि की प्रजाति संडा विधि के लिए उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि ये किस्में रोपाई के 40–60 दिनों बाद अपने पुष्पावस्था तक पहुंच जाती हैं, जो फसल की वृद्धि, कृषि संबंधी मापदंडों और उपज को प्रभावित करती है। इसलिए सांबा, सांबा सब–1, स्वर्णा, सरजू 52, रंजीत, स्वर्णा सब–1, नरेंद्र धान–359, नरेंद्र धान–2064, नरेंद्र धान–2065, प्रखर जैसी लंबी अवधि (150 दिन) की प्रजातियाँ संडा विधि के लिए उपयुक्त हैं।

### फसल वृद्धि और उपज

**पौध संख्याः** परम्परागत धान के खेती में अगर अचानक बाढ़ एवं सूखा की स्थिति प्रारंभिक अवस्था (रोपाई के दिन से कल्ले निकलने की अवस्था तक) में आती है तो धान के पौधों का बचना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। जबकि, संडा विधि में धान के पौध पर प्रतिकूल वातावरण का प्रभाव कम पड़ता है क्योकि इस विधि से उत्पादित पौध लम्बे और स्वस्थ होते हैं और रोपाई के समय या रोपाई के तुरंत बाद बाढ़ एवं सूखा की स्थिति पर आसानी से अपने आप को ढाल लेते है।

**स्वस्थ पौधः** संडा विधि के अंतर्गत, पौध में कल्ले की संख्या अधिक और मजबूत होती है जो पोषक तत्त्वों को एकत्र कर फसल को और भी जयादा मजबूत बनाता है जिससे धान की फसल लंबे समय तक बाढ़ एवं सूखा की स्थिति का सामना कर सकता है, साथ ही प्रतिकूल वातावरण में पौधों को गिरने से भी बचाता है।

**खरपतवारः** संडा विधि में पौध की लम्बाई, कल्लों की संख्या और जड़ की लंबाई की मात्रा परम्परागत विधि से अधिक होती है। जिससे लंबे और स्वस्थ पौधों द्वारा खरपतवारों की वृद्धि अवरुद्ध होती हैं।

**कीट और रोग संक्रमणः** परम्परागत विधि की तुलना में संडा विधि से धान के पौधो में ज्यादा रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है। संडा विधि में रोपाई के दौरान कमजोर, कीट और रोग संक्रमित पौध को अलग कर दिया जाता है जिससे यह संक्रमण से बच जाता है।

**वृद्धि कारकों की प्रतिस्पर्धा में कमीः** परम्परागत विधि की तुलना में संडा विधि के अंतर्गत वृद्धि कारकों के प्रति प्रतिस्पर्धा काफी कम होती है। जिससे फसल की वृद्धि और उपज बढ़ती है।

**वातनः** उचित दूरी और जल प्रबंधन धान की खड़ी फसल के लिए उपयुक्त सूक्ष्म जलवायु प्रदान करते हैं।

पोषक तत्व उपयोग दक्षताः नियंत्रित जल प्रबंधन के कारण संडा विधि में पोषक तत्व विशेष रूप से नाइट्रोजन की हानि बहुत कम होती है। जिससे पौध लम्बे समये तक पोषक तत्व का उपयोग कर उपज को बढ़ाता है।

### संडा विधि के लाभ

- संडा विधि से धान की रोपाई मौसम को ध्यान में रखते हुए, देर से भी किया जा सकता है।
- संडा विधि से मौसमी वर्षा का उपयोग बहुत ही अच्छे तरीके से किया जाता है जो इसका प्रमुख लाभ है।
- कृषि परिवार के मजदूरों को अधिक रोजगार और कुशल उपयोग उत्पन्न करता है।
- संडा विधि, रोपाई के समय में बदलाव के कारण, रोपाई के दौरान उच्च मजदूरी दर से भी बचाती है।
- यह विधि फसल को सूखे और बाढ़ से भी बचाती है।
- इस विधि में बीज और बीज पर लागत से भी बचाती है।
- खरपतवार, कीट और बीमारियों की समस्या को भी कम करती है।
- नियंत्रित जल प्रबंधन के कारण उर्वरक विशेष रूप से नाइट्रोजन की ज्यादा हानि नहीं होती है।
- इस विधि से धान के पौध को लम्बे समये तक उर्वरक प्राप्त होता है।
- संडा विधि में कल्लों की संख्या, पुष्पगुच्छ की संख्या, पुष्पगुच्छ की लंबाई, पुष्पगुच्छ में दानों की संख्या अधिक होती है जिससे उपज भी बढ़ती है।
- संडा विधि से अधिक श्रम की आवश्यकता होती है,

**तालिका–1: परम्परागत और संडा विधि के बीच अंतर**

| विशेषता | परम्परागत विधि | संडा विधि |
|---|---|---|
| प्रजाति | कम अवधि (90 दिन) और मध्यम (120 दिन) | लंबी अवधि (150 दिनः सांबा, सांबा सब–1, स्वर्णा, सरजू 52, रंजीत, स्वर्णा सब–1, नरेंद्र धान–359, नरेंद्र धान–2064, नरेंद्र धान–2065, प्रखर) |
| बीज दर (किग्रा) | अधिक (30–35) | कम (12–15) |
| अवधि (दिन) | कम (90–120) | लंबी (150) |
| नर्सरी में पौध की आयु (दिन) | 21–30 | 60–70 (द्वितीय नर्सरी में पौध की आयु सहित) |
| रोपाई का समय | मध्य जून–जुलाई | जुलाई–अगस्त |
| पानी की आवश्यकता (सेमी) | अधिक (120–160) | थोड़ा कम (70–90) |
| श्रम की आवश्यकता (/हेक्टेयर) | कम (106) | अधिक (125) |
| उत्पादन लागत (/हेक्टेयर) | कम (26650–31445) | अधिक (31300–38658) |
| खरपतवार | अधिक | कम |
| कीट और रोग | अधिक | कम |
| पौधे की ऊंचाई (सेमी) | अधिक (128) | कम (93) |
| बिना भरे दानो की संख्या (:) | अधिक (30–35) | कम (10–15) |
| प्रति पौधा कल्लो की संख्या | कम (12–15) | अधिक (14–20) |
| पुष्पगुच्छों की संख्या (प्रति वर्ग मी.) | कम (150–200) | अधिक (185–240) |
| बायोमास (क्विंटल/हेक्टेयर) | कम (45–68) | अधिक (50–86) |
| पुष्पगुच्छ की लंबाई (सेमी) | कम (26.7) | अधिक (28.3) |
| उपज (क्विंटल/हेक्टेयर) | कम (22.7–55.0) | अधिक (41.5–65.0) |
| शुद्ध लाभ | कम (7355–18400) | अधिक (22500–32610) |
| बीरू सी अनुपात (रुपये/हेक्टेयर) | कम (1.27) | अधिक (1.99) |
| मवेशियों के चारे के रूप में पुआल | मवेशियों द्वारा पसंद किया जाता है | मवेशियों द्वारा कम पसंद किया जाता है |

लेकिन यह खरपतवार के प्रकोप, उर्वरकों, कीटनाशकों और पानी जैसे इनपुट की आवश्यकता को कम करके उत्पादन लागत को कम करता है।

- संडा विधि का उपयोग करके धान की खेती से उच्च उत्पादकता के साथ–साथ किसान भाई अपनी आय को भी बढ़ा सकते हैं।
- परम्परागत की तुलना में संडा विधि से लगभग 16 –50 प्रतिशत उपज में वृद्धि होती है।
- परम्परागत की तुलना में किसान भाई संडा विधि से लगभग 44–68 प्रतिशत तक अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

## संडा विधि से नुकसान

- भूमि तैयार करने और पौधों की रोपाई के लिए अधिक संख्या में श्रम की आवश्यकता होती है।
- संडा विधि से उत्पादित धान का भूसा कठोर होता हैऔर मवेशियों द्वारा चारे के रूप में कम पसंद किया जाता है।
- यह केवल लंबी अवधि की प्रजातियों के लिए उपयुक्त है।
- यह प्रणाली बड़े किसानों के लिए सुविधाजनक नहीं है क्योंकि दो बार रोपाई करने की आवश्यकता होती है।

## सारांश

हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन के कारण बार–बार बाढ़ और सूखे का सामना करना पड़ रहा हैं, जिससे धान की उपज पर बहुत ही ज्यादा प्रभाव पड़ रहा है। अतः बाढ़ एवं सूखा परिस्थिति में धान उत्पादन के लिए संडा विधि एक उपयुक्त पद्धति है। जिससे कम संसाधन में अधिक उपज प्राप्त किया जा सकता है। हालांकि इस पद्धति के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता होती है, लेकिन यह खरपतवार के प्रकोप, उर्वरकों, कीटनाशकों और पानी जैसे निवेशों की आवश्यकता को कम करके उत्पादन लागत को कम करता है। संडा विधि का उपयोग करके धान की खेती से उच्च उत्पादकता के साथ–साथ किसान भाई अपनी आय को भी बढ़ा सकते है।

# तुलसी की वैज्ञानिक खेती एवं प्रसंस्करण

आलोक कुमार* एवं लवकुश पाण्डेय**

**परिचय एवं महत्वः** तुलसी एक व्यापक रूप से विकसित भारत का पवित्र पौधा है। यह स्वाभाविक रूप से दुनिया भर में लगाया जाता है। भारत में हिंन्दू अपने घरों मंदिरों और उनके खेतों में तुलसी को एक धार्मिक संयंत्र के रूप में विकसित करते है। तुलसी एक सुगंधित औषधीय पौधा है, जिसमें लाल या बैंगनी चतुष्कोणीय शाखाएं पाई जाती है। पत्तियां सरल, विपरीत, अंडाकार दांतेदार किनारा एवं कालायुक्त बैंगनी होती है।

पत्तियां लगभग 3–5 सेमी लम्बी व 1.5–2 सेमी, चौड़ी होती हैं। फूल छोटे, बैंगनी और पुष्पक्रम की लंबाई 12–14 सेमी0 होती है। फल छोटे, चिकने और लाल रंग के होते हैं। इससे बीज छोटे–छोटे अंडाकार लाल धब्बों वाले फ्लैट या लाल होते हैं। तुलसी का पौधा परिपक्व होने पर लगभग 75 से 90 सेमी, ऊंचाई प्राप्त करता है।

**औषधीय महत्व या उपयोगः** तुलसी जड़ी बूटी की व्यापक रूप से भारत मे पूजा की जाती है। इसकी औषधीय गुणवत्ता रक्त में शर्करा के स्तर को कम करना और इसके पाउडर को मुंह के अल्सर के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके पत्तियों का रस आम सर्दी, बुखार, ब्रोंकाइटिस, खॉसी, पाचन संबंधी विकारों आदि में उपयोग किया जाता है। कान के दर्द में इसके तेल का उपयोग किया जाता है। कास्मेटिक उद्योग जैसे लोशन, शैंम्पू और साबुन में तुलसी के तेल का उपयोग किया जाता है।

**भूमि एवं जलवायुः** इसकी खेती के लिए उष्णकटिबंधीय और उपउष्णकटिबंधीय जलवायु अनुकूल होती है। लंबे समय तक और उच्च तापमान पौधों के विकास और उच्च तेल उत्पादन के लिए अनुकूल पाया गया है।

भारी दोमट से हल्के लेटराइट, अल्कलीन से मध्यम अम्लीय मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। अच्छी प्रकार सूखी मिट्टी वानस्पतिक विकास में मदद करती है। अधिक जल भराव पौधों में जड़ सड़न पैदा कर देता है। इसके लिए मृदा का पी0 एच0 मान 6.5–8.0 उपयुक्त पाया गया है।

**बीजः** 300–500 ग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

**पौध नर्सरीः** तुलसी फसल की नर्सरी तैयार करने के लिए नर्सरी बेड जिसकी लम्बाई व चौड़ाई क्रमशः 3.0 × 1.0 मी0 रखते हैं और लगभग 15 मई के बाद बुआई करते हैं। तुलसी का बीज बहुत छोटा होता है। इसलिए इसे 1:4 बालू के साथ मिलाकर बुआई करते हैं। सामान्यतः 1–2 सप्ताह में बीज का जमाव हो जाता है। नर्सरी तैयार होने में 6–7 सप्ताह का समय लगता है। जब पौधे में 3–5 पत्तियॉ निकल आयें तो रोपाई के लिए उत्तम मानी जाती है।

**रोपण समयः** तैयार नर्सरी को जुलाई के अंतिम सप्ताह से मध्य अगस्त तक खेत में रोपित किये जा सकते हैं।

**प्रजातियॉः** सामान्यतः तुलसी की दो प्रजातियों की व्यावसायिक खेती की जाती हैं जैसे– कृष्णा तुलसी, श्री तुलसी (रामा तुलसी)।

**रोपण विधिः** जिस खेत में रोपाई करनी होती हैं, उसको तैयार करके छोटे–छोटे प्लाट में बो लेते हैं तथा 60×45 सेमी0 की दूरी पर पौधों की रोपाई करते हैं।

**खाद एवं उर्वरकः** खेत की तैयारी के समय 15 टन सड़ी हुयी गोबर की खाद देते हैं तथा नाइट्रोजन 120 किलो, फास्फोरस 60 किग्रा0 और पोटास 6.0 किलो उर्वरक का प्रयोग करते हैं। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा पौधरोपण के समय देते हैं तथा शेष नाइट्रोजन की आधी मात्रा

(शेष पृष्ठ 11 पर)

*शोध छात्र, **फल विज्ञान विभाग, आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

# धान की फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं उनका निदान

प्रवेश कुमार एवं शेषनारायण

अब तक पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए 17 आवश्यक पोषक तत्वों को पहचाना गया है। ये हैं कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, लोहा, मैंगनीज, तांबा, बोरान, जस्ता, मोलिब्डेनम, निकेल और क्लोरीन। पौधों के जीवन चक्र को पूरा करने के लिए सभी पोषक तत्व अत्यंत आवश्यक हैं। कार्बन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन पौधों के लगभग 95 से 96 प्रतिशत सूखे पदार्थ बनाते हैं। प्रकाश संश्लेषण में खपत कार्बन डाइऑक्साइड तत्व कार्बन और ऑक्सीजन प्रदान करता है। पानी हाइड्रोजन प्रदान करता है और प्रकाश संश्लेषण की प्रकाश प्रतिक्रियाओं के दौरान अणु ऑक्सीजन जारी करता है। शेष 14 पोषक तत्व 4 से 5 प्रतिशत पौधे के सूखे पदार्थ का गठन करते हैं।

**पोषक तत्वों का वर्गीकरणः** पौधे को पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा के आधार पर पोषक तत्वों को प्रमुख एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों में वर्गीकृत किया गया है

**प्रमुख पोषक तत्वः** प्रमुख पोषक तत्व वे पोषक तत्व होते हैं जिनकी पौधों को अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। इसमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर शामिल हैं। प्रबंधन के परिपेक्ष से प्रमुख छः पोषक तत्वों नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर को पुनः प्राथमिक एवं द्वतीय पोषक तत्वों में वर्गीकृत किया गया है।

**प्राथमिक पोषक तत्व :** नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश को प्राथमिक पोषक तत्व कहा गया है क्योंकि इनकी पौधों को अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है व्यवसायिक उर्वरकों में मुख्यता यहि पोषक तत्व पाये जाते हैं और इनका प्रयोग करके इन पोषक तत्वों की कमी को दूर किया जाता है।

**पोषक तत्व :** कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर को द्वतीय पोषक तत्व कहा जाता है क्योंकि पौधों को इनकी मध्यम आवश्यकता होती है और इन पोषक तत्वों की स्थानिक कमी पायी जाती है। और इन पोषक तत्वों का प्रयोग प्राथमिक पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए प्रयोग किये गये उर्वरकों से हो जाता है।

**सूक्ष्म पोषक तत्वः** सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों की सामान्य वृद्धि और विकास के लिए कम मात्रा में आवश्यक पोषक तत्व हैं। लोहा, मैंगनीज, जस्ता, तांबा, बोरॉन, मोलिब्डेनम, निकल और क्लोरीन इस श्रेणी में शामिल हैं। लोहा और मैंगनीज को छोड़कर, पौधों में इन पोषक तत्वों की सांद्रता सूखे वजन के आधार पर 100 मिलीग्राम/किग्रा के भीतर पाई जाती है, जो सामान्य रूप से लगभग 500 मिलीग्राम/किग्रा तक जा सकती है।इन तत्वों को लघु या सूक्ष्म तत्वों के रूप में भी जाना जाता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इनका महत्व प्रमुख पोषक तत्वों से कम है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी या विषाक्तता, प्रमुख पोषक तत्वों की कमी या विषाक्तता के समान पौधों की पैदावार को प्रभावित करते हैं ।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं उनका प्रबंधन

- लोहा

**पौधों में लोहे का महत्व :**

1. क्लोरोफिल एवं प्रोटीन निर्माण में सहायक है।
2. लोहा साइटोक्रोम्स, फैरीडोक्सीन, व हीमोग्लोबिन का मुख्य अवयव है।
3. यह पैधों की कोशिकाओं में विभिन्न ऑक्सीकरण–अवकरण क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है। श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन का वाहक है।

**लोहे की कमी के लक्षण**

1. पत्तियों के किनारों व नसों का अधिक समय तक हरा बना रहना तथा शिराओं के मध्य भाग में पीलापन।
2. नई कलियों की मृत्यु हो जाना तथा तनों का छोटा रह जाना।

विषय वस्तु विशेषज्ञ, मृदा विज्ञान एवं कृषि प्रसार कृषि विज्ञान केंद्र सोहना, सिद्धार्थनगर, आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

3. धान में लोहे की कमी से क्लोरोफिल नहीं बनना तथा पौधे की वृद्धि का रुकना।

**लोहे तत्व का प्रबंधन**

1. मृदा एवं पौधों में इसकी क्रांतिक मात्रा क्रमशः 4.5 एवं 50 पी पी एम है
2. लोहे की कमी को दूर करने के लिए प्रयोग किए जाने वाले मुख्य स्रोतों में आयरन सल्फेट, लोहा–इ डी टी ए, पायराइट आदि उपलब्ध हैं
3. मृदा में लोहे की कमी को दूर करने के लिए 50 से 150 किलोग्राम आयरन सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें या 1 से 2 प्रतिशत आयरन सल्फेट का छिड़काव करें।
4. धान की नर्सरी में आयरन की कमी को दूर करने के लिए 1 से 2 प्रतिशत आयरन सल्फेट का 7 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

**जिंक :**

**पौधों में जिंक का महत्वः**

1. कैरोटीन व प्रोटीन संश्लेषण में सहायक है।
2. हारमोंस के जैविक संश्लेषण में सहायक है।
3. एंजाइम की क्रियाशीलता बढ़ाने में सहायक है क्लोरोफिल निर्माण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।
4. पौधों द्वारा फास्फोरस एवं नाइट्रोजन के उपयोग में सहायक होता है।
5. न्यूक्लिक अम्ल और प्रोटीन संश्लेषण में मदद करता है।
6. हारमोंस के जैव संश्लेषण में योगदान करता है।
7. यह सब तो अनेक प्रकार के खनिज एंजाइमों का आवश्यक अंग है।

**पौधे में जिंक की कमी के लक्षण :**

1. पत्तियों का आकार छोटा, मुड़ी हुई, नसों में नैक्रोसिस, नसों के बीच पीली धारियों का दिखाई पड़ना।
2. धान में जिंक की कमी से खैरा रोग होता है। जिसमें पत्तियों पर लाल भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं।

**जिंक का प्रबंधन :**

1. मिट्टी में जिंक की कमी को दूर करने के लिए 25 से 30 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व प्रयोग करें।
2. खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 0.25 प्रतिशत बिना बुझे चूने के घोल का छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर 2 से 3 बार करें।
3. जिंक ऑक्साइड के 2 से 4 प्रतिशत खोल में बुवाई से पूर्व बीज शोधन करने से जिंक की कमी को दूर किया जा सकता है।

**बोरॉन तत्व**

**पौधों में बोरान का महत्व**

1. पौधों में शर्करा के संचालन में सहायक एवं परागण और प्रजनन क्रियाओं में भी सहायक होता है।
2. दलहनी फसलों की जड़ ग्रंथियों के विकास में सहायक होता है।
3. यह पौधों में कैल्शियम एवं पोटेशियम के अनुपात को नियंत्रित करता है।
4. प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक है।
5. कोशिका विभाजन को प्रभावित करता है।
6. कैल्शियम के अवशोषण और पौधों द्वारा उसके उपयोग को प्रभावित करता है।

**पौधों में बोरान की कमी के लक्षण**

1. पौधे की ऊपरी बढवार का रुकना तथा तने की गांठों के बीच की लंबाई का कम होना
2. पौधों में बौनापन होना तथा जड़ों का विकास रुक जाता है।
3. फूलों में बाँझपन आ जाता है जिससे फूलों में दाने नहीं बनते।

**बोरॉन का प्रबंधन**

1. बोरान की कमी को दूर करने के लिए 15 से 20 किलोग्राम बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व मिट्टी में प्रयोग करें।
2. खड़ी फसल में बोरान तत्व की कमी के लक्षण दिखाई दें तो बोरिक एसिड का 0.2 प्रतिशत घोल का पुष्प आने के समय फसल पर छिड़काव करें।

# उत्तर प्रदेश में मसालों की खेती एवं मसालों का औषधीय महत्व

मनोज कुमार* एवं एस पी सिंह**

**अ**धिकतर सभी राज्य एक या दो मसाले उगाते हैं मुख्य मसाला उत्पादक राज्य आन्ध्र प्रदेश, केरल, गुजरात, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, तमिलनाडु, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश है जहाँ पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश महत्वपूर्ण मसाला उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ पर धनिया, अदरक, मेथी, हल्दी प्रमुखता से उगायी जाती है। पिछलें कुछ वर्षो में पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मसालों की पैदावार और क्षेत्रफल में काफी बढ़ोत्तरी हुयी है, जो कि कमशः 3.6 और 5.6 प्रतिशत है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मेरठ, आगरा, बरेली एवं मुरादाबाद मण्डलों में हल्दी, सूखी मिर्च, धनियों, अदरक, लहसुन, मेंथी एवं सौंफ की खेती व्यापक रूप से की जाती है। वर्ष 2014–15 में हल्दी (40 हे0 क्षेत्रफल, 226 मि0 टन उत्पादन), सूखी मिर्च (5409 हे0, 5087 मि0 टन), धनियो(022 हे0 598 मि0टन) लहसुन (8887 हे0 86949 मि0 टन), मेंथी (42 हे0, 95 मि0 टन), सौंफ (397 हे0 249 मि0० टन) मसाले उत्पादित किये गये। प्राप्त ऑकड़ों के विश्लेषण से यह भी ज्ञात हुआ है कि उपरोक्त समस्त मसालों की इस क्षेत्र में व्यापक मॉग होते हुये भी इनकी प्रति हेक्टेयर उत्पादकता अत्यन्त कम है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में यद्यपि कि मसाला फसलों को उगाने हेतु मौगोलिक संसाधन भरपूर है किन्तु उत्पादकता में गिरे हुये स्तर को सुधारने में निम्न बाधायें प्रतीत हो रही है।

1. भौगोलिक अनुकूलता के अनुरूप उन्नतशील प्रजातियों का अभाव।
2. परिष्कृत उत्पादन तकनीकों का न होना।
3. मसाला उत्पादन हेतु व्यापक रूप से प्रचार प्रसार न होना।
4. मसाला उत्पादन हेतु सामाजिक कुरीतियों का व्याप्त होना।

**भविष्य एवं विस्तारः** उत्तर प्रदेश में मसाले की खेती की सम्भावनायें हैं क्योंकि यहॉ पर इसके उत्पादन के अनुकूल सभी कारक मौजूद है जिससे इसका भविष्य उज्ज्वल है, जिनमें मुख्य कारक निम्न हैः–

**अच्छे किस्म के बीज उत्पादनः** हमारे प्रदेश की अनुकूलता हेतु मसाले वाली फसलों की अच्छी किस्मों का विकास किया जा चुका है जिससे अधिक उत्पादन एवं अच्छी गुणवत्ता के बीज तैयार कर मसालों की औद्योगिक रूप से फसल पैदा की जा सकती है।

**विशेष पैंकिंग द्वाराः** अधिकतर मसाले जल्दी खराब होने वाले होते हैं और उनकी गुणवत्ता के लिये विशेष पैकिंग की आवश्यकता होती है। पैंकिंग के द्वारा हम अच्छा मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। पैंकिंग की आधुनिक तकनीक से मसाले और मसाले उत्पाद लम्बे समय तक रखे जा सकते हैं जिससे इनके क्षेत्रफल एवं विपणन को बढ़ाने की प्रबल सम्भावनाएँ हैं।

**जैविक खाद द्वारा मसालों की फसल तैयार करनाः** जैव पदार्थों द्वारा मसाला पैदा करने का भविष्य अत्यन्त सुखद है। जहां रसायनिक उर्वरक, कीट नाशक पदार्थों, खरपतवार नाशकों का प्रयोग अंधाधुन्ध हो रहा है वही पर जैव पदार्थों द्वारा फसल तैयार करने की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में जैविक खाद द्वारा तैयार मसालों का 20 से 50 प्रतिशत मूल्य अधिक मिल रहा है। फिलहाल संसार में जैविक खाद द्वारा तैयार मसाले 4 से 8 प्रतिशत हिस्से में है जिनके विस्तार की प्रबल सम्भावनाएं हैं।

**मसालों की उद्योगों में कच्चे माल के रूप में प्रयोगः** मसाला द्वारा उत्पाद उद्योगों में कच्चे माल के रूप में उपयोग किये जाते हैं जैसे वनिला का उपयोग–केक, आईसकीम बनाने में, अदरक का प्रयोग दवाओं में, हल्दी का प्रयोग रंग करने में, मिर्च का प्रयोग मसाले के रूप में और ओलियोरेजिंग हल्दी का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन किया जाता है जिनकी बहुत आवश्यकता है पूर्वी उत्तर प्रदेश में क्षेत्रफल बढ़ाने की प्रबल संम्भावनायें हैं।

**अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बढ़ती मॉगः** मसाला फसलों के गति वर्षों में क्षेत्रफल बढ़ा है। परन्तु अन्तराष्ट्रीय बाजार में मसालों की मॉग दिन प्रतिदिन बढ़ने से क्षेत्रफल एवं उत्पादन में वृद्धि करना आवश्यक करना अतिआवश्यक हो गया है। उत्पादकता पर ध्यान देना

*एस एम एस कृषि प्रसार वडा, **एस एम एस उद्यान, विभाग के वे के बेलीपार गोरखपुर, आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

होगा जिससे अन्राष्ट्री मॉग की पूर्ति की जा सके।

**खाद्य पदार्थ उद्योग में मॉगः** खाद में उद्योग में बनावटी रंग पर प्रतिबन्ध लगने और स्वास्थ्य के प्रति सचेत होने से हल्दी की मॉग दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है जिससे इसके उत्पादन को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है।

**आयुर्वेदिक दवाओं में बढ़ती मॉगः** जिस तरह से हम जैविक खेती की ओर बढ़ रहे है ठीक उसी प्रकार हम एलोपैथिक दवाओं से परहेज करने लगे है अब औषधीयों का प्रयोग करने लगे है जो हल्दी एवं अन्य मसालों वाली फसलों से तैयार होती है।

**पूरक कारक मसालें उद्योग के लिएः** पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जलवायु मसलों की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है। यही कारण है कि यहाँ पर मसालों की खेती बहुतायत से की जाती है यहाँ पर बागों की अधिकता होने के कारण बागों की बीच में मसालों की खेती अतिरिक्त रूप से की जाती है जिसमें धनिया, अदरक, हल्दी और मिर्च मुख्य रूप से उगाये जाते है।

**मृदाः** जलवायु की तरह यहाँ की भूमि मसालों फसलों की खेती के लिए उपयुक्त है जिनमें सभी फसलें आसानी से उगायी जाती है।

**श्रमिकः** पश्चिमी उत्तर प्रदेश में श्रमिक आसानी से मिल जाते है जो कि मसालो को उगाने के लिए पूरक कारक का कार्य करते है जैसे बुवाई, कटाई, बीज की सफाई, परागण में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। उपरोक्त कारकों द्वारा हम कह सकते है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मसालों की खेती प्रबल संम्भावनायें है।

संसार की सबसे पुरानी चिकित्सा पद्धति और हमारे देश की संस्कृति आयुर्वेद ने इन मसालों में पाये जाने वाले औषधीय गुणों का पहचाना जोकि मानव कल्याण के लिये केवल भारत में ही नही दुनिया के दूसरे देश में भी ऐसे पौधों से स्वास्थ्य लाभ उठा रहे हैं। घरेलू औषधि उपचार के लिए मसाले बनाये गये है। इस आधार पर भारतीय चिकित्सा को सर्वसुलभ, सस्ता व प्रतिकिया हीन बनाया जा सकता है। यदि मसालों को उपयुक्त मौसम में एकत्र किया जाये, उसे सही ढंग से रखा जाये और प्रयोग किया जाये तो आज भी उनका चमत्कारी प्रभाव देखा जा सकता है।

भारत वर्ष के 84 प्रतिशत लघु एवं सीमान्त जोत वाले कृषकों को कम लागत एवं कम समय से अधिक आय प्राप्ति का श्रोत मसालों की खेती से ही सम्भव है। प्रदेश में मसाला उत्पादन की अभूतपूर्व संभावनायें हैं। इनकी घरेलू मॉग की पूर्ति के अतिरिक्त इनके हमारे देश से विभिन्न देशों की बीज मसाला व उनका तेल निर्यात किया जा रहा है। मसालों की गुणवत्ता का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक महत्व है। मसालों का प्रयोग हमारे शरीर में भोजन में स्वाद उत्पन्न करने के अतिरिक्त विटामिन खनिज लवण एवं एन्जाइम की पूर्ति करता है। मसालों का प्रयोग भोजन के अतिरिक्त विभिन्न औषधियों में भी किया जाता है। कुछ प्रमुख मसालों के औषधीय महत्व का वर्णन करते हुये यहाँ उनके उपयोग भी बताये जा रहे है।

### 1. मेंथी

शोध एवं दाह की शांति हेतु पत्तियों का लेप लामदायक है। इसके बीज अजीर्ण, आमवात व काम शान्ति की कमजोरी में उपयोगी है। रक्तातिसार में बीज भूनकर खिलाते हैं। शरीर में वेदना की दशा में आधा या एक तोला देते है। इसका उबटन त्वचा को कोमल बनाता है। गर्माशय संकोचक व दूध को बढ़ाने के कारण प्रसूता को लडडू खिलाने से भूख बढ़ती है तथा मल व आर्तव की शुद्दि होती है।

### 2. अदरक

अदरक का सूखा रूप ही सोंठ है। यह कफनाशक, पाचक, वातनाशक व गंधयुक्त है उदर वायु को नष्ट करने के कारण उदरशूल एवं हृदयशूल को नष्ट करता है। उर्ष्ण एवं वातहर होने के कारण सभी प्रकार के वातज वेदना, शिरः शूल, वातनाडी शूल, दन्तशूल तथा सन्धिवात आदि में लाभ देता है। इसके सेवन से पेट में वायु संचित नहीं होती है। श्वास, गलारोग व प्रमेह कामला में शुण्ठी चूर्ण गुड़ के साथ देते हैं। अदारक के रस को शहद के साथ श्वास कास आदि कब्ज रोगों में दिया जाता है। भोजन से पहले सँघव लवण के साथ लेने से भूख बढ़ती है। मिचली व वमन में अदरक व प्याज को 4 तोला लेने से लाभ होता है। हृदय व वृक्क के रोगी को नहीं देना चाहिये।

### 3. जीरा

इसका प्रयोग वमन, अजीर्ण, अतिसार, आध्मान ज्वर, पथरी, सुजाक व मूत्रावरोघ में विशेष रूप से किया

जाता है। अतिसार होने पर भूना हुआ चूर्ण दही या मट्ठा के साथ देना चाहिये। ज्वर में यही चूर्ण गुड़ के साथ लेने से भूख बढ़ती है, पेशाब साफ करके दाह को शान्त करता है। जबकि सुजाक में 1 भाग जीरा, खूनखराबा 2 भाग, कलमी शोरा 5 भाग, धनिया 5 भाग तथा गुलाब 2 भाग मिलाकर 2 ग्राम मात्रा आवश्यकतानुसार प्रतिदिन देना चाहिये। प्रसूता स्त्री में दूध बढ़ाता व शोधित करता है। अर्श, स्तन, अण्डकोष तथा उदरशूल में बाहर लेप लगाना लाभदायक है। चर्म रोगों में इसका सिद्ध तेल मलना व क्वाथ से स्नान करना चाहिये।

**4. सौंफ**

इसका अर्क पाचन विकार में देते हैं। यह सुगन्धित दीपन, पाचन, वातानुलोमक, मूत्र विरंजनीय व दाह प्रशमन है। शीतल जल में इसे पीस कर पीने से शारीरिक ताप व मूत्रदाह शान्त होता है। सूखी खांसी या मुख की दुर्गन्ध दूर करने हेतु चबाते हैं। इसकी पत्तियाँ सुगन्धित मूत्रल व स्वेदजनक है। सिर में धूप लगने पर इसका लेप लगाने से आराम मिलता है। यह प्रमुख रूप से अजीर्ण, आमातिसार, ज्वर, कास श्वास, वृक्क विकार प्लीहारोग व दृष्टिमांद्य रोगों में उपयोगी है।

**5. हल्दी**

इसका प्रयोग कफ विकार, त्वचा रोग, रक्त विकार, यकृत विकार, आतिसार, प्रमेह व विषम ज्वर में उपयोगी है। हल्दी को दूध में उबाल कर गुड़ के साथ पीने से कफ विकार दूर होता है। खाँसी में इसका चूर्ण। या 2 माशा शहद या घी के साथ चाटने से आराम मिलता है। चोट, मोच, ऐंठन या कुचले घाव पर चूना प्याज व पिसी हल्दी का गाढ़ा घोल हल्का गर्म करके लेप लगाने से पीड़ा दूर होती है। पिसी हल्दी का उबटन लगाने से त्वचा रोग दूर होते हैं साथ ही शरीर कान्तिमान हो जाता है।

**6. धनियाँ**

यह औषधि के रूप में वमन, नेत्ररोग, अतिसार, आमाजीर्ण व अरूचि शूल में अत्यन्त लाभदायक है। नेत्र रोगों में धनियाँ के क्वाथ को आँखों में डालते हैं परन्तु इसके पूर्व एरण्ड का तेल डालना चाहिये। इसके शीतकषाय को मिश्री एवं शहद के साथ मिला कर देने से ज्वर, जन्म दाह एवं प्यास शान्त होती है। जोड़ों के दर्द में इसके तेल की मालिश से आराम मिलता है। बच्चों में उदर शूल होने पर इसका तेल बतासा में डालकर दिया जाता है। इसकी हरी पत्तियों की चटनी भोजन के साथ रूचि बढ़ाती है साथ ही दीपन पाचक का भी काम करती है व पित्त का शमन करती है।

**7. लहसुन**

इसकी पत्तियों लम्बी, पतली व चपटी होती है। जड़ से पत्तियों के मध्य एक लम्बा डंठल निकलता है जिसमें गुच्छे के रूप में पुष्प आता है। इसकी एक गॉठ में कई जवा लगते है प्रत्येक को अलग करने पर कुत्ते के नाखून की भाँति प्रतीत होता है। इसमें एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध आती है जिसके कारण इसका तामसिक पदार्थ मानते हुये कुछ लोग नही खाते है। यह अत्यन्त उपयोगी होने के कारण इसे गरीबों की कस्तूरी भी कहते हैं। इसका उपयोग विशेष रूप से वात, पाचन व फुफ्फुस विकार सहित अन्य व्याधियों में देते हैं। कर्ण शूल व बहरेपन में रसोन के रस को या इससे सिद्ध सरसों तेल को कान में डालते हैं। नियमित सेवन करने वाले को व्यायाम, अधिक पानी पीना, कोध करना धूप में रहना, दूध एवं गुड़ को छोड़ देना चाहिये। यह मन्दाग्नि को दूर करके भूख बढ़ाती है भोजन में रूचि बढ़ती है। आमवात नाशक है। गन्ध के कारण सांप दूर भागते है। गठिया में इसकी गरम पुल्टिस बांधना व मुरब्बा खिलाना चाहिये। मूत्रावरोध में भी पुल्टिस बांधने से लाभ मिलता है। इसकी चटनी खाने से पेट में उत्पन्न शूल व गैंस से आराम मिलता है। चोट व मोच होने पर इसे पीसकर लेप लगाना चाहिये।

**8. अजवायन**

इसमें उडनशील सुगन्धित तेल होता है तथा पाया जाने वाला रवेदार पदार्थ स्टिअरोप्टिन कहलाता है यही अजवायन का सत है। अजीर्ण, अतिसार, आध्मान, उदरशूल, विसूचिका आदि रोगों में इसका प्रयोग किया जाता हैं। अरण्ड के तेल की गंध इससे दूर की जा सकती है। शुष्क कास–श्वास में इसके बीज का चूर्ण गरम पानी के साथ देते हैं। इसको चबाने से शराब पीने की इच्छा नही होती जिससे शराबी की आदत छुडायी जा सकती है। अजवायन व पिपरमेन्ट का सत व कपूर मिलाकर तैयार तरल पदार्थ बोतल में रख लें। है जो रोगी को इसकी 3–4 ढूँदें बतासे में रखकर कई बार देने से तुरंत लाभ मिलता है।

# मिलेट्स (श्री अन्न):एक जलवायु-स्मार्ट फसल के रूप में

रूपन रघुवंशी* एवं रिंकी कुमारी चौहान**

भारत दुनिया का सबसे बड़ा मिलेट (मोटे अनाज) उत्पादक देश है। राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, हरियाणा, गुजरात, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, झारखण्ड, तमिलनाडु, और तेल्गांना आदि प्रमुख मोटे अनाज उत्पादक राज्य हैं। जबकि आसाम और बिहार में सबसे ज़्यादा मोटे अनाजों की खपत होतीं है। देश में पैदा की जाने वाली मुख्य मिलेट फसलों में ज्वार, बाजरा और रागी का स्थान आंता है।, छोटी मिलेट फसलों में कोदों, कुटकी, सवां आदि की खेती की जाती है। जलवाय परिवर्तन के दृष्टिकोण से भी ये फसलें अत्यंत उपयोगी हैं जो कि सूखा सहनशील, अधिक तापमान, कम पानी की दशा में और कम उपजाऊ जमीन में भी आसानी से पैदा कर इनसे अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।

## मोटे अनाजों को उगाने के फायदे

### 1. पोषण सुरक्षाः

मोटे अनाज गेहूं और चावल की तुलना में सस्ते होने के साथ–साथ उच्च प्रोटीन, फाइबर विटामिन तथा आयरन आदि की उपस्थिति के चलते पोषण हेतु बेहतर आहार होते हैं।

मोटे अनाजों में कैल्शियम और मैग्नीशियम की प्रचुरता होती है। जैसे– रागी में सभी खाद्यानों की तुलना में कैल्शियम की मात्रा सबसे अधिक होती है।

इसमें लोहे की उच्च मात्रा महिलाओं की प्रजनन आयु और शिशुओं में एनीमिया के उच्च लोहे की उच्च प्रसार को रोकने में सक्षम है।:

**जलवायु अनुकूलः** ये कठोर एवं सूखा प्रतिरोधी फसलें हैं जिनका वृद्धि काल (70–100 दिन) गेहूं या चावल (120–150 दिन ) की फसल की तुलना में कम होता है इसके अलावा मोटे अनाजों (350–500मिमी) को गेहूं या चावल (600–1200मिमी) की फसल की तुलना में कम जल की आवश्यकता होती है।

**आर्थिक सुरक्षाः** चूंकि मोटे अनाजों के उत्पादन हेतु निवेश की कम आवश्यकता होती है, अतः ये किसानों के लिये आय के स्थायी स्रोत साबित हो सकते हैं।

**स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निपटने में सहायकः** मोटे अनाज कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने में सहायक है जैसे– मधुमेह और मोटापे की समस्या। क्योंकि वे ग्लूटेन मुक्त होते हैं और इनमें ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है।(खादय पदार्थों में कार्बोहाइड्रेट के सापेक्ष स्तर के अनुसार वे रक्त शर्करा के स्तर को प्रभावित करते हैं)। मोटे अनाज एंटीऑक्सीडेंट का संपन्न स्रोत है।

### जलवायु अनुकूल फसल

बढ़ते तापमान, मानसून के बदलते चक्र और चरम मौसमी घटनाओं के कारण खादयान्न सुरक्षा के लिए खतरा बढ़ रहा है। एक नए अध्ययन में पता चला है कि मोटे अनाज की तुलना में चावल जैसी खादयानन फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। इसीलिए, जलवायु परिवर्तन के चलते खाद्य आपूर्ति की समस्या से निपटने में मोटे अनाज अच्छा विकल्प हो सकते हैं। चावल की तुलना में रागी, मक्का, बाजरा और ज्वार की फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रति कम संवेदनशील होती हैं। चरम जलवायु परिस्थितियों के कारण मोटे अनाजों के उत्पादन में मामूली कमी हो सकती है। मोटे अनाज की फसलें बारिश पर निर्भर होती हैं और खरीफ के मौसम में इनकी खेती की जाती है। सिंचित और असिंचित क्षेत्रों में मोटे अनाजों की तुलना में चावल की पैदावार बारिश के कम–ज्यादा होने से अधिक प्रभावित होती है। इन स्थानों पर चावल की जगह मोटे अनाजों को अधिक उगाने से बदलती जलवायु परिस्थितियों में भी स्थायी खादय आपूर्ति

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार), **विषय वस्तु विशेषज्ञ (कीट विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, हैदरगढ़, आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

बनाए रखने में मदद मिल सकती है। खाद्य आपूर्ति बनाए रखने के लिए अनाजों के सुरक्षित भंडारण,सूखा–सहिष्णु किस्मों के विकास' और सिंचाई को बढ़ावा देने जैसी रणनीतियां भी जलवायुपरिवर्तन की चुनौती से निपटने में कारगर हो सकती हैं।

भारत जिन प्रमुख देशों को मोटे अनाज का निर्यात करता हैं, उनमें संयुक्त अरब अमीरात, नेपाल, सऊदी अरब, लीबिया, ओमान, मिस्र, ट्यूनीशिया, यमन, ब्रिटेन तथा अमेरिका हैं। भारत द्वारा निर्यात किए जाने वाले मोटे अनाजों में बाजरा, रागी, कनेरी, ज्वार और कुट्टू शामिल हैं। मोटे अनाज आयात करने वाले प्रमुख देश हैं – इंडोनेशिया, बेल्जियम, जापान, जर्मनी, मेक्सिको, इटली, अमेरिका, ब्रिटेन, ब्राजील और नीदरलैंड।

## सारांश

हमारे देश में, मोटे अनाज मुख्य रूप से खराब कृषि जलवायु क्षेत्रों, विशेष रूप से देश के वर्षा क्षेत्रों में उगाए जाते हैं। इन फसलों को उच्च तापमान वाले क्षेत्रों में उगाया जाता है और उन्हें शुष्क भूमि फसल कहा जाता है क्योंकि इन्हें 50–100 सेमी वर्षा वाले क्षेत्रों मैं उगाया जा सकता है। ये फसलें मिट्टी की कमियों के प्रति कम संवेदनशील होती हैं और इन्हें कम जलोढ़ या लोमी मिट्टी में उगाया जा सकता है। उन्हें पानी, उर्वरक और कीटनाशकों की भी न्यूनतम आवश्यकता होती है। मोटे अनाज की खेती कार्बन फुटप्रिंट को कम करने में मदद करती है जो आज एक वैश्विक समस्या है।

---

(पृष्ठ 04 का शेष)

पहली कटाई तथा दूसरी कटाई के समय टाप ड्रेसिंग के रूप में देते हैं।

**निराई गुड़ाईः** अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु निराई गुड़ाई करना आवश्यक है। पहली निराई रोपण के एक महीने बाद तथा दूसरी निराई दो महीने बाद करनी चाहिए।

**फसल की कटाईः** रोपाई के 3 माह बाद फसल पहली कटाई के लिए तैयार हो जाती है। फसल की कटाई भूमि से 15 सेमी0 की उपज से करते हैं जिससे की पहली कटाई के लिए पौधों का और अच्छी तरह से विकास हो सके। पहली कटाई के बाद 70–75 दिन के बाद अगली कटाई करनी चाहिए।

**उपजः** तुलसी की औसत उपज 9000 से 14000 किग्रा0, प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है

**तेल की उपजः** तुलसी के पत्तियों से लगभग 80 से 100 किलोग्राम तेल प्रति हे0 प्राप्त होता है

**आयः** तुलसी की खेती से लगभग रू0 50000 से 60000/– प्रति हे0 की आय प्राप्त की जा सकती है।

**तुलसी के उत्पादः**

- आर्गेनिक इण्डिया तुलसी स्वीट रोज चाय
- हनी एण्ड स्पाइस तुलसी हनी
- सब्जा बेसिल सीड
- इस्कान तुलसी बीड ट्रिपल लेयर कन्ठी
- तुलसी पाउडर
- तुलसी तेल

**प्रसंस्करणः** तुलसी के पूरे पौधे का महत्व है एवं प्रसंस्करण हेतु पौधे के प्रत्येक भाग को उपयोग में लाया जाता है तुलसी की पत्तियों का सुखाकर पाउडर बनाया जाता है जो तुलसी बेसिल लीफ पाउडर के रूप में प्रयोग किया जाता है। मीण तुलसी तेल (स्वीट बेसिल इसेसियल ऑयल) का उपयोग होता है।

**तुलसी पाउडर बनाने की घरेलू विधिः** सबसे पहले तुलसी की पत्तियों को अच्छी तरह से धो ले। इसके बाद धुली हुई पत्तियों को एक तौलिये पर 2–3 दिनों के लिए छायादार स्थान पर सूखा ले। सूर्य की रोशनी से दूर रखे। पत्तियों में 3 दिनों के उपरान्त नमी खत्म हो जायेगी। इसके बाद पत्तियों को अच्छी तरह रगड़ लें और साफ मिक्सी या सिल पर पीस लें। पिसे हुये तुलसी के पाउडर को वायु रोधक कन्टेनर में रखकर सुरक्षित स्थान पर रख दें।

# धान में लगने वाले कीट-रोग की पहचान एवं उनका नियंत्रण

हिमांशु शेखर सिंह, वी. पी. सिंह एवं डा. सौरभ वर्मा

चावल की खेती वैश्विक स्तर पर की जाती है। यह दुनिया की आधी आबादी का मुख्य भोजन माना जाता है। भारत में भी बड़े पैमाने पर धान की खेती होती है। जहां दुनिया भर में लगभग 48 मिलियन हे0 भूमि पर धान की खेती होती है वहीं धान की 90 फीसदी खेतती एशियाई देशों में की जाती है। भारत के हरियाणा, पंजाब एवं छत्तीसगढ समेत कई राज्यों में धान की खेती बड़े भूभाग पर की जाती है। धान की खेती करने वाले किसानों को सबसे ज्यादा समस्या इसमें लगने वाले कीट व्याधियों की वजह से होती है। दरअसल धान की फसल पर कई तरह के कीटों व रोगों का प्रकोप होता है जो धान के अधिक उत्पादन में बाधा डालते हैं। दुनियाभर में धान की फसल में लगने वाले कीट तथा रोगों के कारण सालाना लगभग 10 से 45 फीसदी उत्पादन कम होने का अनुमान है, जिससे घान की खेती करने वाले किसानों को आर्थिक रूप से बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। ऐसे में सही समय पर फसल में कीट एवं रोगों की पहचान कर उनका नियंत्रण करना बेहद आवश्यक है। धान की फसल में लगने वाला प्रमुख कीट–बीमारियों की पहचान एवं उनका नियंत्रण निम्नवत है।

**प्रमुख कीटः–**

**1. तना बेधकः**– यह कीट धान की फसल में दो अवस्थाओ में आक्रमण करता है। प्रथम बार कल्ले निकलने की अवस्था में आक्रमण करता है जिससे मरे हुये कल्ले निकलते हैं जिसे डेड हर्ट कहते हैं तथा दूसरी बार गभोट की अवस्था में आक्रमण करता है जिससे जगह जगह सफेद बालियाँ निकलती हैं तथा बालियों को खीचने पर पौधों से तुरन्त अलग हो जाती हैं इस अवस्था को व्हाइट इअर हेड कहते हैं।

**नियंत्रणः** इस कीट के नियंत्रण हेतु धान की रोपाई के 8–30 दिन के अन्दर फिप्रोनिल 0.6 प्रतिशत (जी.आर.) 4 किलोग्राम दवा को 0–5 किलोग्राम रेत या यूरिया में मिलाकर एक एकड़ खेत में भुरकाव करें तत्पश्चात हल्का पानी लगा दें अथवा खड़ी फसल में क्लोरेंट्रानीलीप्रोल 8.5 प्रतिशत (एस.सी.) 60 मिली या कटे हाइड्रोक्लोराइड 75 प्रतिशत (एस.जी.) 200 ग्राम प्रति एकड़ की दर से 450 लीटर पानी के साथ छिडकाव करें।

**दीमकः**– यह एक सामाजिक कीट है जो कालोनी बनाकर रहता है। इनकी कालोनी में 90 प्रतिशत श्रमिक, 2–3 प्रतिशत सैनिक, एक रानी व एक राजा होते हैं। श्रमिक पीलापन लिये हुए सफेद रंग के पंखविहीन कीट होते हैं जो पौधों की जड़ों को खाकर नुकसान पहुंचाते हैं। कीटग्रस्त पौधे खेत में जगह–जगह सूखे हुए दिखाई देते हैं।

**नियंत्रणः** खड़ी फसल में कीट के लक्षण दिखाई देने पर सिंचाई के पानी के साथ क्लोरपाइरीफास 20 प्रतिशत (ई.सी.) 2.5–3 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। अथवा रोपाई के 8–30 दिन के अन्दर फिप्रोनिल 0.6 प्रतिशत (जी.आर.) 4 किलोग्राम दवा को 10–15 किलोग्राम रेत अथवा यूरिया में मिलाकर एक एकड़ खेत में भुरकाव करें।

**पत्ती लेप्टकः** धान की फसल में यह कीट शुरूआती अवस्था में ही आक्रमण कर देता है, इस कीट की हरी पत्तियों के दोनों किनारों को लपेटकर अन्दर ही अन्दर पत्तियों का हरा भाग खुरचकर खाती हैं,जिससे पत्तियों पर सफेद सफेद धारियां पड़ जाती हैं। अतः पौधा अपना भोजन नहीं बना पाता।

**नियंत्रणः** इस कीट के नियंत्रण हेतु फिफ्रोनिल 5 प्रतिशत (एस.सी.) 250 मिली या क्लोरेंट्रानीलीप्रोल 8. 5 प्रतिशत (एस.सी.) 60 मिली प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

**हरा फुदकाः** इस कीट के प्रौढ़ पौधों की पत्तियों से

कृषि विज्ञान केन्द्र, बरासिन, सुलतानपुर, आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

रस चूसते हैं जिससे पत्तियां किनारों से हल्के पीले रंग की हो जाती है तथा उनका अग्र भाग नारंगी–लाल रंग का रहता है जिसके कारण पौधों की बढ़वार रुक जाती है। यह कीट धान की फसल में टुंग्रो विषाणु रोग का वाहक भी है।

**नियंत्रणः**– इस कीट के नियंत्रण हेतु फ्लोनिकामिड 50 प्रतिशत (डब्लूजी.) 80 ग्राम या थायमिथोक्साम 25 प्रतिशत (डब्लू–जी.) 00 ग्राम प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

**भूरा फुदकाः**– इस कीट के प्रौढ़ पौधों के निचले हिस्से (तना) से रस चूसते हैं जिससे पत्तियां भूरे रंग की होकर सूख जाती हैं। कीट का आक्रमण अधिक होने पर फसल जगह–जगह धब्बों में जली हुई नजर आती है इस अवस्था को हॉपर बर्न कहते हैं। ये कीट पौधों से रस चूसने के आलावा एक प्रकार का मीठा श्राव छोड़ते हैं,जिससे काली फफूंद उग आती है।

**नियंत्रणः**– इस कीट के नियंत्रण हेतु पाइमेट्रोजिन 50 प्रतिशत (डब्लू'जी.) 20 ग्राम या डिनोटेफ्युरान 20 प्रतिशत (डब्लू जी.) 80 ग्राम प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

**गंधी बगः**– यह कीट धान की फसल में बालियाँ निकलने की अवस्था में आक्रमण करता है तथा दानों का रस चूसता है जिससे बालियों के अंदर दानों का विकास नहीं हो पाता इस कीट के आगमन से खेत में एक विशेष प्रकार की बदबू आती है जिससे इनकी उपस्थिति को पहचाना जा सकता है।

**नियंत्रणः**– इस कीट के नियंत्रण हेतु बीटा–साइफ्लुथ्रिन+इमीडाक्लोप्रिड 28.3 प्रतिशत (ओ. डी.) 00 मिली या प्रोफेनोफास+साइपरमेथ्रिन 44 प्रतिशत (ई.सी.) 300 मिली प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

**प्रमुख रोगः**

**झोंका रोगः**– यह धान की प्रमुख बीमारी है इस रोग में पत्तियों के ऊपर अंडाकार अथवा नाव के आकार के धब्बे बनते हैं जो किनारों पर कुछ नुकीले होते हैं। इन धब्बों के बीच का भाग सफेद या धूसर रंग का तथा किनारा भूरे रंग का रहता है। नम वातावरण में ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं तथा पूरी पत्ती को सुखा देते हैं।

**नियंत्रणः**– इस रोग के नियंत्रण हेतु टेबुकोनाजोल+ट्राईफ्लोक्सिस्ट्राबिन 75 प्रतिशत (डब्लूजी.) 00 ग्राम या टेबुकोनाजोल 259 प्रतिशत (ई. सी.) 250 मिली प्रति एकड़ की दर से 50 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

**भूरा पत्ती धब्बाः**– इस रोग में पत्तियों के ऊपर छोटे छोटे गोल आकार के धब्बे बनते हैं जिनके बीच वाला भाग हल्के भूरे रंग का तथा किनारे गहरे भूरे या लाल रंग के होते हैं। कभी–कभी धब्बे पीले रंग के छल्लों से घिरे रहते हैं। आर्द्र मौसम में ये धब्बे आपस में मिलकर पूरी पत्ती को सुखा देते हैं।

**नियंत्रणः**– इस रोग के नियंत्रण हेतु हेक्साकोनाजोल 5 प्रतिशत (एस.सी.) 300 मिली या कार्बेन्डाजिम+ मैंकोजेब 75 प्रतिशत (डब्लूपी.) 300 ग्राम प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

**पर्णच्छद अंगमारीः**– इस रोग के शुरुआत में जमीन के ठीक ऊपर वाली पत्तियों के आवरण पर अंडाकार अथवा अनियमित आकार के धब्बे बनते हैं जिनके किनारे भूरे रंग के तथा बीच वाला भाग धूसर या सफेद रंग का होता है(र्ग एवं आर्द्र मौसम में धब्बे ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं तथा ऊपरी पर्णच्छद एवं पत्तियों पर फैल जाते हैं।

**नियंत्रणः**– इस रोग के नियंत्रण हेतु हेक्साकोनाजोल+वैलिडाइसिन 7.5 प्रतिशत (एस.सी.) 400 मिली या टेबुकोनाजोल 25.9 प्रतिशत (ई.सी.) 250 मिली प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

**4. आभासी कंडवाः**– यह रोग धान की फसल में फूल वाली अवस्था 24 पं है। इस रोग से बाली के कुछ दाने ही प्रभावित होते हैं जबकि शेष सामान्य रहते हैं। रोगी दानों में एक मखमली भरा रहता है, जो रोग की शुरूआत में पीले नारंगी रंग का रहता है तथा एक पतली झिल्ली से घिरा रहता है। कुछ दिनों बाद का रंग जैतूनी या काला हो जाता है तथा झिल्ली फट

(शेष पृष्ठ 18 पर)

# हाइड्रोपोनिक्स : मिट्टी के बिना पौधे उगाने की तकनीक

संदीप कुमार पाण्डेय, प्रमोद कुमार मिश्र एवं डी. के. सिंह

हाइड्रोपोनिक एक ऐसी तकनीक है जिसमें पौधे को पोषक जलीय घोल में उगाया जाता है, इस तकनीक में पौधे को अकार्बनिक रूप में पोषक तत्व प्रदान किए जाते हैं। हाइड्रोपोनिक्स एक ग्रीक शब्द है जो दो शब्दों से मिलकर बना हैः 'हाइड्रो' का अर्थ पानी और 'पोनोस' का अर्थ श्रम है। हाइड्रोपोनिक्स में उगाई जाने वाली फसलों को नियंत्रित परिस्थितियों में 15 से 30 डिग्री सेल्सियस ताप पर लगभग 60 से 80 प्रतिशत आर्द्रता में उगाया जाता है। हाइड्रोपोनिक्स पोषक तत्व घोल में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, कॉपर, आयरन, मैंगनीज, जिंक और बोरॉन होते है। इसके निम्न लाभ हैःहाइड्रोपोनिक सिस्टम में उगाए गए पौधे मिट्टी में उगाए गए पौधों की तुलना में अधिक तेजी से वृद्धि एवं विकास करते हैं।

हाइड्रोपोनिकली उगाई जाने वाली फसलों से पारंपरिक खेती की तुलना में अधिक पैदावार और बेहतर गुणवत्ता प्राप्त होती है ।

यह तकनीक पानीके साथ–साथ पोषक तत्वों की बचत करने में मदद करती है।

मिट्टी की तुलना में रोग और कीट की समस्या बहुत कम और नियंत्रित करने में आसान होती है।

मिट्टी में उगाए जाने वाले पौधों की अपेक्षा इस तकनीक में बहुत कम स्थान की आवश्यकता होती है।

यह जमीन और सिंचाई प्रणाली के अतिरिक्त दबाव से छुटकारा दिलाने में सहायक होती है।

इस प्रकार लागत इनपुट, कौशल स्तर, स्थान की उपलब्धता और आवश्यक पर्यावरण पहुंच के आधार पर मुख्य रूप से छह प्रकार के हाइड्रोपोनिक सिस्टम हैं। इसे मोटे तौर पर दो समूहों में विभाजित किया जा सकता हैः

**निष्क्रियहाइड्रोपोनिक सिस्टमः** इस तकनीक में बिना किसी यांत्रिक प्रभाव के कोशिका बल क्रिया का उपयोग करके जड़ों को पोषक तत्व घोल प्रदान किया जाता है। विक हाइड्रोपोनिक सिस्टम इसी श्रेणी में आता है।

**सक्रियहाइड्रोपोनिक सिस्टमः** इस तकनीक मेंपोषक तत्व घोल और वातन को प्रसारित करने में मदद करने के लिए कुछ तंत्र प्रभाव लागू किया जाता है। पंप जड़ों को पोषण और वातन प्रदान करने के लिए जिम्मेदार होते हैं। अन्य पाँच प्रकार की हाइड्रोपोनिक प्रणालियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

## हाइड्रोपोनिक सिस्टम के प्रकार

### विक (बाती) हाइड्रोपोनिक सिस्टम

यह सबसे सीधी हाइड्रोपोनिक प्रणाली है जिसमें पोषक तत्वों के परिवहन के लिए किसी तंत्र की आवश्यकता नहीं होती है। विक (बाती) हाइड्रोपोनिक सिस्टम एक तेल के दीपक के समान कार्य करती है। जड़ें टैंक से सब्सट्रेट तक जाने वाली कपास या नायलॉन बत्ती की मदद से पोषक तत्वों को अवशोषित करती हैं।एक सब्सट्रेट एक बढ़ता हुआ मीडिया है जो पौधों की जड़ों को एंकरिंग और वातन प्रदान करता है। इस प्रणाली में उपयोग किया जाने वाली सब्सट्रेट सामग्री में नारियल फाइबर, पेर्लाइट परत, वर्मीक्यूलाइट, मिट्टी के कंकड़, लावा चट्टानें आदि को शामिल किया जा सकता हैं।ट्रे या कंटेनर के नीचे से बत्ती के एक छोर को सम्मिलित करके ग्रोविंग मीडिया को बत्ती प्रणाली में पहुँचा जाता है। दूसरे छोर को जलाशय या कंटेनर में लटकाकर पोषक तत्व का घोल प्रदान किया जाता है।

इस प्रणाली में बाती के ऊपर, तरल तब तक बहेगा जब तक कि जड़ों के चारों ओर का मीडिया गीला न हो जाए। मीडियाके सूख जाने के बाद बत्ती एक बार फिर से तरल पदार्थ सोख लेगी। विक हाइड्रोपोनिक सिस्टम छोटे पौधों के लिए सर्वोत्तम हैं और अक्सर

आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

सुंदर बागवानी में उपयोग किया जाता हैं। इस हाइड्रोपोनिक प्रणाली को व्यापक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि इस सिस्टम में पोषक तत्वों के घोल में ऑक्सीजन कम हो सकता है। इसके साथ–साथ, ग्रोविंग मीडिया में मौजूद खनिज लवणों के जमाव को रोकने के लिए पौधों को सप्ताह में एक बार सादे, ताजे पानी से बाहर निकालने की आवश्यकता होती है।

**डीप वाटर हाइड्रोपोनिक सिस्टमः** डीप वाटर हाइड्रोपोनिक सिस्टम प्रणाली की सबसे आसान और सबसे प्रभावी प्रणाली है। इस प्रणाली में, पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त करने के लिए पौधे की जड़ें लगातार पोषक तत्व घोल में डूबी रहती हैं।पौधों को आमतौर पर एक प्लेटफार्म पर तय किया जाता है जो अक्सर फोम या प्लास्टिक से बना होता है। यह प्लेटफॉर्म पोषक घोल से भरे टैंक में तैरता या बहता रहता है। इस प्रणाली में एक विशेष वायु पंप पोषक तत्व घोल के वातन में मदद करता है। इस तकनीक में पौधे की जड़ें 24 घंटे पानी में डूबी रहती हैं, इसलिए फफूंद के संचय से बचने के लिए घोल को नियमित रूप से बदलना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।डीप वाटर हाइड्रोपोनिक सिस्टम का उपयोग मुख्य रूप से छोटे और तेजी से बढ़ने वाले पौधों की खेती के लिए किया जाता है, उदाहरण के लिए, लेट्टूस और सलाद।

**फ्लड और ड्रेन प्रणालीः** इस प्रणाली को फ्लड और ड्रेनपद्धति के रूप में भी जाना जाता है। इस प्रणाली को व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है ।इस व्यवस्था में पौधों को एक ट्रे में रखा जाता है जिसमें समय–समय पर पोषक तत्वों से भरपूर पानी की आपूर्ति की जाती है।ट्रे के नीचे एक पंप लगा होता है जो पानी में डूबा रहताहै, जो ट्रे को पोषक घोल से भर देता है। एक बार जब पानी एक निर्धारित स्तर तक पहुँच जाता है, तो एक अतिप्रवाह पाइप जलाशय में पोषक तत्व के घोल को वापस बहा देता है।पूरे फ्लड चक्र के दौरान कम ऑक्सीजन वाली हवा को इस प्रणाली से बाहर धकेल दिया जाता है। जब पोषक घोल को वापस लिया जाता है, तो ऑक्सीजन युक्त हवा को ग्रोविंग मीडिया में खींच लिया जाता है। जिसके फलस्वरूप, जड़ें पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त करती हैं और अधिक पोषक तत्व ले सकती हैं।निरंतर पुनः उपयोग के लिए जलाशय में पानी को वापस लाने के लिए फ्लड और ड्रेनप्रणाली द्वारा गुरुत्वाकर्षण का उपयोग किया जाता है।एक ही पानी को एक बार में करीब एक हफ्ते तक इस्तेमाल किया जा सकता है। जब पानी बदलने का समय आता है, तो नए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

**न्यूट्रियंट फिल्म तकनीक या पोषक तत्व फिल्म तकनीकः** यह एक हाइड्रोपोनिक तकनीक है जिसमें पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक सभी घुले हुए पोषक तत्वों से युक्त पोषक घोल की बहुत उथली धारा को पौधों की जड़ों के माध्यम से पुनः परिचालित किया जाता है। इस प्रणाली के सरलतम रूप ने इसे फसलों की एक विस्तृत श्रृंखला के अनुकूल बनाने में सक्षम बनाया है। इसमें थोड़ा ढलान वाला चैनल होता है जो चैनल के भीतर डूबी पौधों की जड़ों से गुजरने के लिए पोषक तत्व घोल के उथले प्रवाहया फिल्म की अनुमति देता है। इस उथले प्रवाह की गहराई अधिक नहीं होनी चाहिए इस प्रणाली में यह एक या दो इंच तक की कोई भी सीमा अक्सर स्वीकार्य मानी जाती है।

**ड्रिप सिस्टमः** ड्रिप प्रकार की हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली पारंपरिक क्षेत्र सूक्ष्म सिंचाई तकनीक के सिद्धांत के आधार पर काम करती है। ड्रिप सिस्टम हाइड्रोपोनिक्स प्रत्येक पौधे को प्रत्येक की जरूरतों के आधार पर पोषक तत्वों से भरे पानी को वितरित करने के लिए पानी के पंप द्वारा संचालित ट्यूबों की एक प्रणाली का उपयोग करता है।

पंप आमतौर पर टाइमर से जुड़ा होता है जो सिंचाई कार्यक्रम को स्वचालित करता है। ड्रिप सिस्टम पोषक तत्व–घने पानी को सीधे पौधों के आधार तक पहुँचाता है। इसलिए यह पानी के वाष्पीकरण को कम करके पौधों की जड़ों को नम रखने में मदद करता है।ड्रिप हाइड्रोपोनिक सिस्टम दो प्रकार के होते हैं:

**ए. रिकवरी ड्रिप सिस्टमः** इस प्रणाली को रीसर्क्युलेटिंग ड्रिप हाइड्रोपोनिक सिस्टम के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि इस प्रणाली में, अतिरिक्त पानी टैंक में वापस चला जाता है और इसका पुनः उपयोग किया जाता है। किसी प्रकार की सटीक जल प्रबंधन योजना की आवश्यकता नहीं है; इसलिए, एक साधारण टाइमर अच्छी तरह से काम कर सकता है।हालांकि, घोल के पीएच स्तर की पूरी तरह से निगरानी की जानी चाहिए, जो पौधों के विकास को प्रभावित कर सकता है।

**बी. नॉन–रिकवरी ड्रिप सिस्टमः** यह प्रणाली पोषक तत्वों से भरपूर पानी का पुनःउपयोग नहीं करती है, इसलिए टाइमर को सटीक रूप से सेट किया जाना चाहिए, अन्यथा पानी की अत्यधिक आपूर्ति जड़ों को नुकसान पहुंचा सकती है और जड़ सड़न का कारण बन सकती है। समाधान के पीएच स्तर और पोषक संतुलन की जांच करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे समान रहते हैं। इस प्रकार, रखरखाव आसान है। पाइपों के बंद होने से बचने के लिए बढ़ते माध्यम को साफ पानी से धोना आवश्यक है।

हाइड्रोपोनिक सिस्टम के घटकः एक हाइड्रोपोनिक सेटअप में निम्नलिखित घटक होते हैंः

यह एक छिद्रित कक्ष है जिसमें पौधे उगाए जाते हैं। पौधों की जड़ें पोषक तत्वों के घोल वाले जलाशय में डूबी रहेंगी। कक्ष पौधों को प्रकाश, तापमान और कीट संक्रमण जैसे पर्यावरणीय कारकों से बचाता है।

**जलाशयः** कक्ष के आधार को जलाशय कहा जाता है, जिसमें पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व घोल होता है।

**पनडुब्बी पंपः** पंप पौधों की जड़ों तक पोषक तत्वों के घोल के परिवहन में मदद करता है। ये पंप इम्पेलर्स के रूप में कार्य करते हैं जो स्पिन करने के लिए इलेक्ट्रोमैग्नेट का उपयोग करते हैं।

**वितरण ट्यूबः** ट्यूब सिस्टम को पीवीसी या विनाइल सामग्री के साथ स्थापित किया जा सकता है। टयूबिंग पोषक तत्वों के घोल/ऑक्सीजन को पौधों की जड़ों तक प्रवाहित करने में मदद करता है।

**वायु पंपः** पौधों की वृद्धि के लिए ऑक्सीजन एक महत्वपूर्ण तत्व है। वायु पंप पोषक तत्व समाधान के लिए हवा और ऑक्सीजन की आपूर्ति करते हैं। हवा को छोटे बुलबुलों के समूह के माध्यम से पंप किया जाता है जो पोषक तत्व समाधान के माध्यम से उठते हैं। जलाशय में अक्सर हवा का पंप तय होता है, जो पानी में घुलित ऑक्सीजन के स्तर को बढ़ाने में मदद करता है, धीरे–धीरे पौधों के समग्र स्वास्थ्य को बनाए रखता है।

**ग्रो लाइट्सः** ग्रो लाइट्स सूर्य के प्रकाश के रूप में कार्य करती हैं जो प्रकाश के निश्चित रंग स्पेक्ट्रा का उत्सर्जन करती हैं। ग्रो लाइट्स बाजार में एलईडी एमिटर के रूप में उपलब्ध हैं।

**हाइड्रोपोनिक पोषण माध्यम की संरचनाः** पानी के अलावा, हाइड्रोपोनिक विकास माध्यम में रॉकवूल, हाइड्रोकॉर्न (छोटी मिट्टी की चट्टानें), नारियल फाइबर या चिप्स, पेर्लाइट, रेत और वर्मीक्यूलाइट शामिल हो सकते हैं। ये तत्व "निष्क्रिय" होते हैं और पोषक विलयन के साथ अभिक्रिया नहीं करते हैं। इन तत्वों की झरझरा प्रकृति पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति में मदद करती है। हालांकि, किसी भी कवक या मोल्ड के विकास से बचने के लिए नमी के स्तर की नियमित रूप से जांच की जानी चाहिए, अन्यथा यह टयूबिंग सिस्टम को रोक देगा, और अंततः पौधे मर सकते हैं।

हाइड्रोपोनिक पोषक समाधान में प्रयुक्त यौगिकः

**1.अमोनियम फॉस्फेट** – इसका उपयोग विकास शुरू करने के लिए किया जाता है। जड़ प्रणाली की स्थापना के लिए फास्फोरस महत्वपूर्ण है।

**2.पोटैशियम और नाइट्रोजन**– ये किसी भी पौधे के प्राथमिक पोषक तत्व होते हैं।

**3.मैग्नीशियम क्लोरोफिलः** अणु का एक महत्वपूर्ण घटक है, इस प्रकार हरे रंजकता है। मैग्नीशियम सल्फेट आमतौर पर जरूरत को पूरा करने के लिए प्रयोग किया जाता है; अन्यथा, इसकी कमी से पत्तियां पीली और पीली हो सकती हैं।

**4.बोरिक एसिड**– इसका उपयोग अवांछित पौधों को खत्म करने के लिए किया जाता है, जैसे भंगुर तने, मरते हुए बढ़ते सिरे आदि।

**5.क्लोरीनः** क्लोरीन आयनों के रूप में प्रदान किया जाता है जो पत्तियों के रंध्रों के खुलने और बंद होने को नियंत्रित करने के लिए जिम्मेदार होता है। प्रकाश संश्लेषण में जल–विभाजन प्रणाली के लिए क्लोरीन आयनों की भी आवश्यकता होती है। क्लोरीन की कमी से पत्तियों का मुरझाना और गिरना हो सकता है।

**6.सोडियम**– पौधों में क्लोरोफिल को संश्लेषित करने के लिए छं आयनों के रूप में सोडियम की आवश्यकता होती है। सोडियम आयन, क्लोरीन आयनों के साथ मिलकर रंध्रों को खोलने और बंद करने में मदद करते हैं।

**7. EDTA-rRo Cu, Fe, Zn,** आदि धातुओं के साथ कीलेटिंग लिगेंड बनाता है, और इससे पौधों को इन पोषक तत्वों को बेहतर तरीके से ग्रहण करने में मदद मिलती है।

हाइड्रोपोनिक सिस्टम में उगाए जाने वाले पौधेः लेत्तुस, सेलेरी, बेसिल,ऑरेगैनो, रोजमेरी, स्ट्रॉबेरी, आलू, टमाटर, पुदीना इत्यादि।

## हाइड्रोपोनिक तकनीकः

हाइड्रोपोनिक सिस्टम दो प्रकार के होते हैं, यानी ओपन और क्लोज्ड सिस्टम। खुली प्रणालियों में, पोषक घोल के लिए कोई पुनः उपयोग के उपाय नहीं होते हैं और एक बार जब घोल पौधों की जड़ों से होकर बह जाता है, तो यह जमीन में मिल जाता है, जिससे प्रदूषण और उर्वरक की बर्बादी होती है। जब उसी पोषक विलयन को तंत्र में परिचालित किया जाता है तो ऐसी प्रणाली को बंद प्रणाली कहा जाता है। यहां छह अलग–अलग प्रकार के हाइड्रोपोनिक सिस्टम हैं जिनका उपयोग कर सकते हैं, जिनमें निम्न शामिल हैंः

## हाइड्रोपोनिक्स उपयोगी सब्सट्रेट

पौधों को उगाने के लिए उपयोग किए जाने वाले माध्यम में इष्टतम जलधारण क्षमता और वातन के लिए अच्छी सरंध्रता होनी चाहिए। सब्सट्रेट का चयन फसल उगाने के प्रकार, फसल की वृद्धि की अवधि और हाइड्रोपोनिक प्रणाली के प्रकार पर निर्भर करता है। मुख्य रूप से उपयोग किए जाने वाले विकास माध्यम विस्तारित मिट्टी, नारियल कॉयर, रॉकवूल, बजरी, पेर्लाइट, रेत, वर्मी क्यूलाइट और बजरी हैं। बड़े आकार के समुच्चय बहुत जल्द बाहर निकलेंगे और छोटे आकार वाले लंबे समय तक नमी बनाए रखेंगे और इसके परिणाम स्वरूप जड़ों में सीमित वातन और खराब जल निकासी होगी।

## पीएच और विद्युत चालकता

पीएच और विद्युत चालकता पोषक घोल की दो महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं, जिन्हें हाइड्रोपोनिक प्रणाली में उपज और पौधों की गुणवत्ता के लिए इष्टतम स्तर पर बनाए रखने की आवश्यकता होती है। पोषक तत्व घोल का पीएच 5.5 से 6.5 के बीच बनाए रखा जाना चाहिए इससे अधिक पीएच होने पर पोषक घोल में नाइट्रिक एसिड या फॉस्फोरिक एसिड का प्रयोग किया जाना चाहिये। पौधों का उत्पादन पोषक तत्व के विलयन की कुल आयनिक सांद्रता वृद्धि एवं विकास को निर्धारित करती है।

## हाइड्रोपोनिक्स तकनीक के फायदे

इस तकनीक से बिना मिट्टी की भी खेती जाती है।

पानी से ही पौधों को सीधा पोषण मिलता है।

मिट्टी इस्तेमाल न होने से खरपतवार नहीं होता है।

इस तकनीक में पौधे 25–30 प्रतिशत तेजी से वृद्धि करते हैं।

इस प्रणाली से उगायी सब्जी में स्वाद एवं पोषक तत्व ज्यादा पाया जाता है।

बेहतर उपज और उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादन।

पानी की खपत कम होती है ।

कीट पतंगो का प्रकोप कम होता है ।

समय की बचत होती है

## हाइड्रोपोनिक्सतकनीक के नुकसान

हाइड्रोपोनिक उच्च सेट–अप लागत

एक हाइड्रोपोनिक प्रणाली का सेट–अप इतना महंगा

है। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक हाइड्रोपोनिक प्रणाली को चलाने के लिए विभिन्न घटकों जैसे पोषक तत्व टैंक, वायु पंप, जलाशय, तापमान नियंत्रक, ईसी मीटर, पीएच मीटर, अम्लता नियंत्रण और प्लंबिंग सिस्टम की आवश्यकता होती है, और प्रकाश वृद्धि सेटअप लागत बढ़ती है।

## हाइड्रोपोनिक खेती के ज्ञान की आवश्यकता

एक हाइड्रोपोनिक प्रणाली में बहुत सारे तकनीकी पहलू शामिल होते हैं।सिस्टम के उपकरण और प्रक्रियाओं के लिए उचित प्रशिक्षण और अनुभव वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है।आवश्यक ज्ञानकी कमी से पौधों का वृद्धि एवं विकास पर प्रभाव, जो उपज को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकते हैं और इसके परिणामस्वरूप नुकसान हो सकता है।

## निरंतर विद्युत आपूर्ति की आवश्यकता

हाइड्रोपोनिक खेती प्रणाली के सभी भागों को लगातार चलाने की क्षमता के लिए बिजली महत्वपूर्ण है। बिजली के अनुप्लब्धता की स्थिति में पूरी प्रणाली विफलता के लिए अतिसंवेदनशील होती है, जो पौधे की वृद्धि को नुकसान पहुंचा सकती है।

**तालिकाः लवणता समूहों और फसलों के उदाहरण के लिए थ्रेसहोल्ड ईसी**

| लवणता समूह | अधिकतम विद्युत चालकता | फसलों का उदाहरण |
|---|---|---|
| संवेदनशील | 1.4 | सलाद, गाजर, स्ट्रॉबेरी, प्याज |
| मध्यमसंवेदनशील | 3.0 | ब्रोकोली, गोभी, टमाटर, ककड़ी,मूली, कालीमिर्च |
| मध्यमसहनशील | 6.0 | सोयाबीन, राईग्रास |
| सहिष्णु | 10.0 | बरमूडा–घास, चुकंदर, कपास |

## हाइड्रोपोनिक्स तकनीक की चुनौतियाँ

सबसे बड़ी चुनौती तो इस तकनीक को इस्तेमाल करने में शुरुआती खर्चे अधिक होते है।

चूँकि इस विधि में पानी का पंपों की सहायता से पुनः इस्तेमाल किया जाता है, उसके लिये लगातार विद्युत आपूर्ति की आवश्यकता होती है।

तीसरी सबसे बड़ी चुनौती है लोगों की मनोवृत्ति या सोच को बदलने की।

इस प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण लाभ न्यूनतम स्थान का उपयोग करके अधिक से अधिक लाभ कमाना है।

---

(पृष्ठ 13 का शेष)

जाती है जिससे हवा के साथ (वीवड़े३ एक पौधे से दूसरे पौधे में फैल जाता है।

**नियंत्रणः**– इस रोग की रोकथाम के लिए रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए एवं धान के खेत में लगभग 50 प्रतिशत बालियां आने पर प्रोपिकोनाजोल 25 .प्रतिशत (ई.सी.) 200 मिली प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।

**5. जीवाणुजनित झुलसाः**– इस रोग में पत्तियों के दोनों किनारों पर पीले–नारंगी रंग की धारियां बनती है तथा बीच वाला भाग हरे रंग का रहता है। कुछ समय बाद धारियां अंदर की ओर बढ़ती हुई पूरी पत्ती को सुखा देती है जिससे पत्तियां पुआल के रंग की हो जाती हैं। यदि आसमान में बादल छाये हों तथा हवा के साथ लगातार बारिश हो रही हो तो इस रोग का प्रकोप अधिक बढ़ जाता है।

**नियंत्रणः**– इस रोग के नियंत्रण हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 30 ग्राम दवा के साथ कॉपर आक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत (डब्लूपी.) को 400 ग्राम मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

**6. खैरा रोगः**– यह रोग मिट्टी में जिंक की कमी के कारण होता है इस रोग की शुरूआत में पत्तियाँ पीली पड़ जाती है। जिस पर बाद में कत्थई रंग के धब्बे बन जाते हैं।

**नियंत्रणः**– इस रोग की रोकथाम के लिए जिंक सल्फेट; 33 प्रतिशत 5 से 6 किग्रा प्रति एकड़ की दर से बुआई अथवा रोपाई के पूर्व आखिरी जुताई पर मृदा में मिलाकर देने से खैरा रोग का प्रकोप नहीं होता है। खड़ी फसल में इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर 2 किग्रा जिंक सल्फेट के साथ 1 किग्रा बुझा हुआ चूना या 8 किग्रा यूरिया को प्रति एकड़ 200 ली0 पानी में मिलाकर छिड़काव करके इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

# फलों में ग्राफ्टिंग द्वारा प्रसारण

रितेष सिंह एवं आलोक कुमार

**ग्रेफ्टिंग या कलम बन्धन**

जब किसी एक पौधे या दो अलग–अलग पौधों की कटी हुई सतहों को इस प्रकार मिलाते हैं जिससे आपस में जुड़कर एक पौधे की तरह बढ़ सकें तो इसे कलम बन्धन या ग्रेफ्टिंग कहते हैं। इस प्रकार से तैयार पौधे के नीचे के भाग को जिसमें मूल तन्त्र लेना होता है, मूलवृत्त कहते है और वह भाग जिससे तना बनता है और जिस पर फूल और फल आते हैं, सांकुर कहते है। कभी–कभी विशेष परिस्थितियों में सांकुर और मूल वृन्त के बीच अन्य तने का छोंटा भाग लगाया जाता है जिसे मध्यस्थ मूल वृन्त कहा जाता है।

**कलम बन्धन व ग्रेफ्टिंग द्वारा प्रवर्धन का महत्व**

**1. शीर्ष कटिंग एवं लेयरिंग के विकल्प के रूप में–**

आम, अखरोट, बादाम आदि ऐसे फल वृक्ष कटिंग या लेयरिंग के द्वारा आसानी से प्रवर्धित नही होते है तब इनका व्यवसायिक प्रवर्धन ग्रेफ्टिंग के द्वारा किया जाता है।

**2. मूलवृन्त के गुणों के लाभ उठाने के लियेः**

कुछ फल वृक्षों में इन विधियों को व्यावसायिक प्रवर्धन के अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त किया जाता है ताकि मूलवृन्त के गुणों का लाभ उठाया जा सके। मूल वृन्त के रूप में प्रयोग किये जाने वाले पौधे आमतौर पर स्थानीय किस्मों के होते हैं। जो वहॉ की जलवायु, प्रतिकूल दशाओं तथा कीट व्याधियों के प्रति सहिष्णु हो जाते हैं।

**3. मध्यस्थ मूलवृन्त का लाभः**

कभी–कभी देखा गया है कि मूलवृन्त और सांकुर के बीच असंगति होती है जिससे उनमें जुड़ाव सफल नही होता है। ऐसी दशाओं में दोनों के मध्य एक उस जाति का दुकड़ा प्रयोग करते है जो दोनों से जुड़ने की क्षमता रखता है। जिससे कलम सफलतापूर्वक वृद्वि करती है। कभी–कभी मध्यस्थ मूलवृन्त का प्रयोग पौधे के वृद्वि नियन्त्रण के लिये भी करते हैं।

**4. पूर्णरूप से स्थापित निम्न गुणवत्ता वाले वृक्षों को बदलने मेंः**

कभी–कभी पौधशाला की त्रुटि से बीजू पौधे या अवांछित किस्म के पौधे प्राप्त हो जाते हैं या सांकुर के टूट जाने से केवल मातृपौधे ही बढ़ने लगते हैं। मैदानी इलाकों में देशी आम, बेर, आंवला तथा पर्वतीय क्षेत्रों में सेब , चेरी, आडू आदि के पौधे उगते देखे जाते हैं। उपरोक्त पौधों को ढांचा रोपण या शिखर रोपण करके मूल पौधों की अच्छी अवांछित किस्म से उच्च कोटि के फलदार पौधों में बदला जा सकता है।

**5. परागणकर्ता किस्म की व्यवस्था में सहायकः**

कुछ फल वृक्षों जैसे–ऑवला, सेब, बादाम, चेरी, लोकाट में स्वनिशेच्यता पायी जाती है। कभी–कभी भूल से उद्यान में ऐसी किस्में एकल ही लग जाती हैं। ऐसी दशा में वे फल नही देती हैं। यदि एक अवस्था पर परागणकर्ता किस्म लगाई जाये तो पुष्प देने में पौधे चार से पांच वर्ष का समय लेते हैं। ऐसी दशा में उद्यान में काफी हानि होती है। इस दशा में परागणकर्ता किस्म के कुछ शाखाओं या कलियों को ब पौधों की शाखाओं पर चढ़ा देते है, जो अगले वर्ष ही पुष्प उपलब्ध करा देती है।

**6. संकुल पौधे का निर्माणः**

कभी–कभी एक ही मूलवृन्त पर एक से अधिक किस्मों का प्रत्यारोपण कर देते है, जिससे एक ही पौधे पर कई किस्मों के फल प्राप्त होते है। इस प्रकार का प्रत्यारोपण आम, अलूचा, आडू, खूबानी, बादाम आदि के पौधों पर किया जाता है यद्यपि इसकी व्यावसायिक उपयोगिता नही है फिर भी इसका अपना विशिष्ट मूल्य है।

**संकरण से प्राप्त किस्मों के मूल्यांकन की अवधि में कमी।**

आमतौर पर संकरण से प्राप्त बीजू पौधों में फलत आने में 5 से 10 वर्ष लग जाता है। अतः इससे पूर्व उनके फलत एवं फल के गुणों का मूल्यांकन नही हो पाता है। कुछ मूलवृन्तों पर इनकी शाखाओं के प्रत्यारोपण करने से फलत शीघ्र प्राप्त होने लगती है जिससे नई किस्म के फलों का मूल्यांकन जल्दी किया जा सकता है।

षोध छात्र (फल विज्ञान), आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

**7. क्षतिग्रस्त पौधे का सुधार**

कभी–कभी किसी चोट या रोग के कारण भूमि की सतह के पास वृक्ष का मुख्य तना क्षतिग्रस्त होती है। इसके उपचार हेतु इसमें सेतु कलम बन्धन करके इनका पुनः सुधार किया जा सकता है।

**8. विषाणुओं के संक्रमण का परीक्षणः**

अनेक फल वृक्षों में विषाणुओं का संचरण संक्रमित सांकुर या मूल वृन्त से होता है। अतः इस संक्रमण को जांचने हेतु उनका प्रत्यारोपण सूचक पौधे पर करके किया जाता है।

**कलम बन्धन की विभिन्न विधियॉ**

ग्रेफ्टिंग की विधियों को प्रमुखताः

अ. भेंट कलम बन्धन

ब. वियोज्य (डिटैच) कलम बन्धन

**अ. भेंट कलम बन्धन**

इसमें सांकुर को अपने मातृ वृक्ष से तब तक जुड़ा रखा जाता है जब तक वह मूलवृन्त से पूर्णरूप से जुड़ न जाये। इसमें सफलता की सम्भावना अधिक होती है। कुछ पुस्तकों में इंनार्चिग का नाम भी दिया गया है परन्तु हार्टमेन तथा केस्ठर (1976) इसे स्पष्ट रूप से अलग बताते हैं। इस प्रकार के कलम बन्धन में मूलवृन्त और सांकुर लगभग एक ही मोटाई के लिये जाते हैं। कांट के आधार पर इसे दो विधियों से करते हैं।

**1. तराशी भेंट कलम बन्धन**

इसमें मिलाप के स्थान पर दो से पांच सेमी. लम्बी छाल थोड़ी लकड़ी के साथ निकाली जाती है और फिर इन कटी हुई सतहों को आपस में मिलाकर सुतली या पालीथीन से बांध देते हैं। 2 से 3 माह में मिलाप पूर्ण हो जाता है तब मूलवृन्त को जोड़ से 3–4 सेमी. ऊपर और सांकुर को जोड़ से इतने ही नीचे पर काटते हैं। आम, आंवला, अमरूद, कटहल, लोकाट आदि में यह विधि सफलतापूर्वक प्रयोग में लाई जाती है।

**2. जिहवा भेंट कलम बन्धन**

यह विधि तराशी कलम का परिवर्तित रूप हे परन्तु इसमें प्राणि कलम के बाद के आगे भाग पर मूलवृन्त पर नीचे की ओर सांकुर में ऊपर की तरफ 2 से 3 सेमी. गहरा एक चीरा ओर लगाते हें जिससे दोनों में से एक पतली लकडी अलग हो जाती है और शाखा में जिह्वा का आकार दिखाई पड़ने लगता है दोनों जिह्वाओं को आपस में साकुर बांध देते हें चूंकि इस विधि में जुड़ाव वाले क्षेत्र में बढ़ोततरी हो जाती हें इसलिये सुलता की अधिक सम्भावना होती हे ओर मिलाना अपेक्षाकृत अधिक मजबूत होता हें

**वियोजय कलम बन्धन**

इस प्रकार के कलम बन्धनों में सांकुर को मूलवृन्त पर चढ़ाने के पूर्व मातृ वृक्ष से अलग कर दिया जाता है।

**1. काशा कलम बन्धन**

इसमें प्रायः एक वर्ष आयु के मूलवृन्त और सांकुर प्रयुक्त किये जाते हैं। सांकुर डाली 10 से 15 सेमी. लम्बी एवं 4 से 5 कलियों वाली होती है। मूलवृन्त के ऊपरी सिरे पर 2 से 4 सेमी. लम्बा तिरछा चीरा लगाया जाता है और इसी प्रकार का एक चीरा सांकुर के निचले सिरे पर लगाते हैं और दोनों कटे भागों को मिलाकर बांध देते हैं।

**2. जिह्वा कलम बन्धन**

यह काशा कलम बन्धन का परिवर्तित रूप है। इसमें पहले काशा कलम बन्धन की तरह मूलवृन्त और सांकुर पर चीरे लगाये जाते हैं और फिर उन पर एक और चीरा लगाकर जिह्वा बना दी जाती है। इन दोनों जिह्वाओं को एक दूसरे में फंसाकर बांधते है। इसमें जोड़ काशा कलम बन्धन की अपेक्षा अधिक मजबूत होता है। सेब, नाशपाती, अखरोट आदि में इस विधि का प्रयोग अधिक होता है।

**3. पार्श्व कलम बन्धन**

जैसा इसके नाम से ज्ञात होता है इस विधि में सांकुर का प्रत्यारोपण मूलवन्त के पास में किया जाता है। यह प्रमुखतः तीन विधियों से किया जाता है।

**क. ठूंठ कलम बन्धन**

इसका प्रयोग किसी दिशा में शाखा प्रदान करने या जिन पौधों में किसी कारण सांकुर मर गया हो, उसे परिवर्तित करने के लिये किया जाता है। इसमें शाखा को 20 से 300 तक झुकाते हुये 2.5 से 3 सेमी. गहरा कटावा इस प्रकार लगाया जाता है कि वह झुकने पर खुल जाये और दबाव हटने पर बन्द हो जाये। 8 से 12 सेमी. लम्बी शाखायें जो लगभग 1 सेमी मोटी होती है, सांकुर के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इसके आधार पर 2 से 2.5 सेमी. तिरछा साफ चीरा लगाते हैं और मूलवृन्त के कटाव में फंसाकर बांध देते हैं।

**ख. पार्श्व जिह्वा कलम बन्धन**

यह विधि पूर्व वर्णित जिह्वा कलम बन्धन की तरह ही है। अन्तर केवल इतना है कि मूलवृन्त के ऊपर का हिस्सा जोड़ कर मजबूत हो जाने के बाद काटा जाता है।

**ग. विनियर कलम बन्धन**

इस विधि के द्वारा आम और अमरूद के प्रवर्धन में अच्छी सफलता मिल रही हैं। प्रत्यारोपण के एक सप्ताह पूर्व सांकुर शाखा की पत्तियां थोड़ा पर्णवृन्त छोड़ते हुये काट दी जाती है। इससे शीर्ष कलिका थोड़ा विकसित हो जाती है और इस दौरान पर्णवृन्तों के ठूंठ भी गिर जाते है। सांकुर की लम्बाई 10 से 15 सेमी. होती है जिसके आधार पर एक ओर लम्बा तथा दूसरी और छोटा चीरा लगाकर उसे नुकीला रूप दिया जाता है। मूलवृन्त के आधार पर 2.5 से 4 सेमी. लम्बा चिकना चीरा इस प्रकार लगाते हैं कि थोड़ी लकड़ी का टुकड़ा निकल जाये। दूसरा हल्का चीरा अन्दर की तरफ पहले चीरे से मिलाते हुये बनाते हैं, जिससे छाल के अतिरिक्त थोड़ी लकड़ी निकल जाती है और सांकुर के प्रत्यारोपण का स्थान बन जाता है जिस पर सांकुर को जमाकर बांध देते हैं।

**4. स्फान कलम बन्धन**

इस विधि का प्रयोग पुराने पौधों के मुख्य तने या शाखा में चोटी कलम बन्धन हेतु किया जाता है। मूलवृन्त की मोटाई 4 से 10 सेमी. तक होती है। इसे आमतौर से अखरोट, हेजलनट, पीकननट और अंगूर जैसे पौधों में प्रयोग करते हैं। मूलवृन्त की शाखाओं को सीधा सफाई से काट दिया जाता है और शाखा के बाहरी सतह पर 5 से 12 सेमी. लम्बाई में सीधा चीरा लगाते हैं। यह कार्य चाकू पर हथौड़ी से दबाव डालकर करते हैं। चीरा लगाने के बाद इसमें कोई लकड़ी का टुकड़ा फसा देते हैं। सांकूर की शाखा के आधार पर 4 से 5 सेमी. लम्बा सीधा चीरा दोनों तरफ लगाया जाता है जिससे इसका आकार स्फान या बेज जैसा दिखाई पड़ता है। मूलवृन्त से लकड़ी का टुकड़ा हटाकर सांकुर का प्रत्यारोपण कर देते हैं। प्रत्यारोपण में इस बात का ध्यान रखते है कि मूलवृन्त एवं सांकुर की ऐसी कोशिकायें अवश्य सम्पर्क में आ जायें।

**5 पल्याण कलम बन्धन**

इस विधि में मूलवृन्त को ऊपर से काटर दोनों तरफ तिरछा काट लगाते हुये बेज आकार का बना देते हैं तथा साकुर में नीचे की ओर बी के आकर का खांचा बनाते हैं और इसे मूलवृन्त पर प्रत्यारोपित कर देते हैं।

**6.सेतु कलम बन्धन**

यह ऐसे फल वृक्षों में प्रयोग में लाई जाती है जिसमें कालर के पास का कुछ भाग छतिग्रस्त हो गया हो। इसे फरवरी–मार्च में नई वृद्वि प्रारम्भ होने के थोड़ा पहले करते हैं। सर्वप्रथम एक वर्ष पुरानी स्वस्थ शाखाओं को सांकुर के रूप में चुनते हैं तथा छतिग्रस्त छाल को चाकू की सहायता से अलग कर देते हैं। स्वस्थ छाल के ऊपरी और निचले सिरे पर 5–6 सेमी. लम्बा चीरा लगाते हैं। सांकुर के दोनों ओर इस प्रकार चीरा लगाते हैं कि उनका सिरा नुकीला हो जाये फिर उन्हें चित्र में दिखाये गये तरीके से प्रत्यारोपित कर दोनों सिरों को पतली कील से जड़ देते हैं और उन पर मोम लगा देते हैं। यह विधि सेब, नाशपाती, चेरी, अखरोट, आदि में सफल सिद्व हुई है। इन सांकुर शाखाओं से भोज्य पदार्थ ऊपर जाना प्रारम्भ कर देते हैं।

**7. जड़ कलम बन्धन**

इसमें पौधे की मुख्य जड़ या उसकी उप–शाखाओं के 10 से 15 सेमी. लम्बे टुकड़े को मूलवृन्त के रूप में प्रयोग में लाते हैं। शीतोष्ण फल वृक्षों के जड़ों को दिसम्बर में खोदकर उसी समय जिह्वा अथवा काशा कलम बन्धन द्वारा प्रवर्धन करके गट्ठरों में बांधकर नम बालू में रख दिया जाता है। सांकुर के लिये 3 से 4 कलियों युक्त 10 से 15 सेमी. लम्बी शाखा का प्रयोग करते है। लगभग 2 माह में कैलसिंग की क्रिया पूरी हो जाती है तब इन्हें फरवरी–मार्च में क्यारियों में लगा देते हैं।

**8 छाल कलम बन्धन**

इसे 3 सेमी से 30 सेमी तक के मोटाई के तने पर करते हैं। इसका उपयुक्त समय तब होता है जब पौधे वृद्वि की सक्रिय अवस्था में होते हैं क्योकि उस समय छाल सरलता से स्थान छोड़ देती है। सांकुर लगभग 10 सेमी लम्बा सुसुप्तावस्था में लिया जाता है। सदाबहार वृक्षों में सांकुर नई वृद्वि से लेते हैं। सांकुर के आधार पर एक ओर लम्बा चीरा लगाते हैं तथा छाल को ढीला कर सांकुर को बड़े काट की ओर से छाल में फंसा देते हैं।

**9 प्रांकुर कलम बन्धन**

(शेष पृष्ठ 23 पर)

# शुद्ध गन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पाद

पीयूष गुप्ता*, अनिल कुमार** एवं आशीष कुमार वर्मा***

गन्ने का रस एक मूल्यवान आधार उत्पाद है जो गन्ने से प्राप्त किया जाता है ताकि बढ़ी हुई पोषण गुणवत्ता के साथ रुचि के उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला तैयार की जा सके। गन्ने का रस में विभिन्न प्रकार की मैर चीनी अशुद्धियाँ होती हैं जिन्हें गन्ने का रस पेय सहित उत्पादों की तैयारी से पहले हटाया जाना है। ये गैर चीनी घटक उत्पादों की स्थिरता, रंग और बनावट में हस्तक्षेप करते हैं। वे मुख्य रूप से फाइबर, मोम, वसा, गंदगी, मिट्टी, एल्ब्यूमिनोइड्स, गोंद, स्टार्च, कार्बनिक अर्म्ल आदि का गठन करते हैं। जब तक वे मौजूद हैं, वे गन्ने का रस के घटकों को बदलते हैं, रासायनिक रूप से मूल घटकों और पी.एच.को बंदलते हैं, जो प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। अंतिम उत्पादों की गुणवत्ता और शेल्फ जीवन इसलिए इस पत्र में गन्ने के रस में मौजूड, घटकों के महत्व और उन्हें दूर करने के बारे में बताया गया है। स्पष्ट गन्ने का रस से, चार उत्पाद अर्थात गन्ने का रस पेय, बादाम गुड़ अँगूर का रस गुड़ और गन्ने का रस समृद्ध पेय ऐसे उत्पादों को तैयार करने के लिए गन्ने का रस की क्षमता और बहुमुखी प्रतिभा दिखाने के लिए तैयार किए गए हैं। इन उत्पादों की पोषण गुणवत्ता मूल रूप से गन्ने का रस में मौजूद खनिजों, विटामिनों के कारण है और उनके द्विभिन्न स्वास्थ्य लाभ हैं। बादाम और अंगूर के रस गुड़ की शेल्फ लाइफ छह महीने पाई गई। गन्ने का रस बेवरेज और गन्ने का रस रिच ड्रिंक परिवेशी परिस्थितियों में बिना फफूंदी के तीन महीने तक स्थिर पाए गए) शुद्ध गन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पादों का निर्माण एक महत्वपूर्ण औद्योगिक क्रिया है जो भारतीय खाद्य और पेय पदार्थों की एक प्रमुख विशेषता है। गन्ने का रस अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों और विभिन्न प्रकार के उपयोगिताओं के लिए महत्वपूर्ण सामग्री के रूप में जाना जाता है। शुद्ध गन्ने का रस उच्च गुणवत्ता और प्राकृतिकता के कारण महत्वपूर्ण है। इसमें आवश्यक मिनरल्स, विटामिन्स, एंजाइम्स और अन्य पोषक तत्व पाए जाते हैं जो शरीर के लिए उपयोगी होते हैं। यह विभिन्न प्रकार के रोगों को रोकने और उन्हें कम करने में सहायक होता है। शुद्ध गन्ने के रस का उपयोग खाद्य उत्पादों, पेय पदार्थों और विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट और पोषणपूर्ण उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। इसका प्रमुख उपयोग शक्कर, गुड़, रबड़ी, शरबत, स्सगुल्ला, चंबल की क्षीर, आदि में किया जाता है।

**सामग्री और तरीके**

शुद्ध गन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार करने के लिए विभिन्न सामग्री और विधियों का उपयोग किया जाता है। यहां कुछ आम सामग्री और विधियां दी गई हैं, जो इस प्रक्रिया में उपयोग की जाती हैं;

**शुद्ध और गुणवत्तापूर्ण गन्नाः** गन्ने का चुनाव करते समय यह सुनिश्चित करें। गन्ना अच्छी गुणवत्ता का हो और किसी भी कीटाणु निर्माण के लिए प्रमाणित न हो।

**2. देसी या खादियाः** देसी या खादिया को गन्ने के रस में उच्च गुणवत्ता वाले.उत्गादों की तैयारी के लिए उपयोग किया जाता है। इससे रस का मूल्यवर्धन होता है और उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ती है।

**3. विभिन्न फलों और सब्जियों का रसः** इस प्रक्रिया में आमतौर पर लाल गाजर, नींबू, आम, सेब, अनार, अदरक आदि का उपयोग किया जाता है। इन रसों से उपयोगकर्ताओं को स्वादिष्ट और पौष्टिक उत्पाद मिलता है।

**गन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पाद**

गन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पादों में कई विभिन्न चीजें शामिल हो सकती हैं। यह निम्नलिखित उत्पादों के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

**1. गन्ने का रस (शरबत):** गन्ने के रस को शरबत के रूप में उपयोग किया जाता जिसमें गन्ने का रस, नींबू का रस, पानी और चीनी का मिश्रण होता है। यह एक प्रसिद्ध शीतल पेय होता है और गर्मियों में लोगों द्वारा आनंद उठाने के लिए उपयोग किया जाता है।

**2. गुड़ और शक्करः** गन्ने के रस को खाद्य उपयोग के

*परास्नातक छात्र (कृषि अर्थशास्त्र), **सहायक प्राध्यापक (कृषि अर्थशास्त्र), ***शोध छात्र (शस्य विज्ञान), आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

लिए घटियों (शक्कर) और ठोस गुड़ (गुड़) में बदला जा सकता है। यह एक प्राकृतिक मिठाई है और आपको ऊर्जा प्रदान करने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

**3. राबः** राब या राबड़ी गन्ने के रस का एक प्रकार है, जिसे गन्ने के रस को उबालकर तैयार किया जाता है। यह मिठाई के रूप में उपयोग होता है और दक्षिण भारत में खासकर लोकप्रिय है।

**4. शक्करकंदीः** गन्ने के रस को शक्करकंदी या खण्डवीर भी बनाया जाता है।

## परिणाम और चर्चा

शुद्ध गन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पादों का परिणाम और चर्चा मुख्य रूप गन्ने की रस की गुणवत्ता, पोषण और स्वाद के आधार पर होती है। यह उत्पादों को मधुर और स्वादिष्ट बनाने के साथ–साथ उन्हें औरंढ कैकी और पोषक बनाने में मदद करता हैशुद्ध गन्ने के रस का परिणाम उच्च गुणवत्ता और पोषण स्तर का होता है। यह रस विटामिन्स, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट्स का एक अच्छा स्रोत होता है। इसमें कैल्शियम, पोटेशियम, आयरन, फोस्फोरस, मैग्नीशियम और विटांमिन सी की मात्रा पायी जाती है। यह उत्पाद शरीर के लिए पोषक और शक्ति देने वाले तत्वों की पर्याप्त मात्रा प्रदान करता है। शुद्ध गन्ने के रस से बने मूल्यवर्धित उत्पादों में शर्बत, शरबती और चाय शामिल होते हैं। इन उत्पादों का मूल्यवर्धित बनाने का कारण उन्हें एक बेहतर स्वाद, आकर्षक रंग और पोषकता के साथ पेश करना होता है।

## निष्कर्ष

शुद्ध गने के रस से मूल्यवर्धित उत्पादों के बारे में एक निष्कर्ष निकालने से पहंले, यह महत्वपूर्ण है कि हम शुद्ध गन्ने के रस की परिभाषा को समझे शुद्ध गन्ने का रस वह रस है जो गन्ने को प्रेस करके प्राप्त किया जाता है; और जिसमें किसी भी प्रकार का कोई अन्य पदार्थ या योजक नहीं होता है। शुद्ध गन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पादों की प्रस्तुति में बहुत सारे फायदे हो सकते हैं। यह एक प्राकृतिक मिठास और पोषक तत्वों का अच्छा स्त्रोत होता है जो आपके शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं। इसके अलावा, यह विभिन्न विटामिन, मिनरल और एंटीऑक्सीडेंटूस से भरपूर होता है, जो आपके स्वास्थ्य को सुधारने में मदद कर सकते हैं। शुद्ध गन्ने के रस से मूल्यवर्धित उत्पादों की सूची में शामिल हो सकते हैं गन्ने का रस, शरबत, शक्कर, गुड़, गुड़ का पाउडर, गन्ने की जागरी, गन्ने की खांड और अन्य पदार्थ जो इसे प्रस्तुत करने के लिए उपयोग किया जाता हैं।

---

(पृष्ठ 21 का शेष)

इसे आम, अखरोट, काजू आदि में व्यावसायिक प्रवर्धन हेतु प्रयोग करते है। देशी आम की गुठलियां पत्ती की खाद में ढक दी जाती है जो 15 से 20 दिन बाद अंकुरित हो जाती है। 7 से 10 दिन बाद जब ताम्रवर्णीय पत्तियां हल्की पीली होने लगें तो उस समय अमोले (पीका) को गुठली सहित उखाड़कर 10 से 15 सेमी ऊंचाई पर जिह्वा अथवा पल्याण विधि से प्रत्यारोपित कर देते हैं। सांकुर हेतु 2 से 3 माह पुरानी शाखाओं प्रयोग में लाते हैं।

### 10 दोहरा कलम बन्धन

इसमें एक बार कलम बन्धन करने के बाद उसी मुलवृन्त पर दुबारा कलम बन्धन किया जाता है। इसलिये इसे डबल वर्किग के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इस विधि को तब प्रयोग करते हैं जब वांछित सांकुर और मूलवृन्त में मिलाप सम्भव नही होता है। ऐसी दशा में इसमें मध्यस्थ मूलवृन्त का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिये नाशपाती की वार्टलेट किस्म को जब क्विन्सेस पर लगाते हैं तो उनको आपस में मिलाप सफल नही होता है। ऐसी दशा में क्विन्स पर पहले ओल्ड होम किस्म को प्रत्यारोपित करते है और अगले वर्ष इन प्रवर्धित पौधों पर शर्टलेट किस्म को प्रत्यारोपित कर देते हैं।

### 11. मृदु शाख कलम बन्धन

इसमें बाग में गड्ढे खोदकर 2 या 3 आम की गुठलियां समान दूरी पर बो दी जाती हैं। एक वर्ष तक उन्हें बढ़ने दिया जाता है, इन्ही स्वस्थाने मूलवृन्त में कलम बन्धन की प्रक्रिया सम्पादित की जाती है। चीरा तब लगाते हैं जब मूलवृन्त के शीर्ष की ताम्रवर्णीय पत्तियां हल्की पीली पड़ने लगती हैं। सांकुर हेतु 3 से 5 माह पुरानी शाखायें प्रयोग में लाई जाती हैं। इसे आम, कालू, कटहल, ऑवला आदि में सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

# मत्स्य आहार भंडारण एवं गुणवत्ता

ज्ञानदीप गुप्ता* एवं एल. सी. वर्मा**

भारत में खाद्यान्न छोटे किसानों द्वारा पारंपरिक संरचनाओं का उपयोग करके संग्रहित किया जाता है। भंडारण की कमी के कारण मात्रा और गुणवत्ता दोनों का नुकसान होता है। मत्स्य आहार की गुणवत्ता और मछलियों की वृद्धि के बीच महत्वपूर्ण संबंध है और इसमें न केवल सभी आहार घटकों की मात्रात्मक मात्रा शामिल है, बल्कि उन घटकों की पाचनशक्ति और उपापचय भी शामिल है। आहार की मात्रा में कमी, कीड़े, कृन्तकों, घुन, पक्षियों और सूक्ष्मजीवों के कारण होती है। गुणवत्ता हानि का मुख्य कारण नमी में वृद्धि, मुक्त फैटी एसिड का स्तर, पीएच और प्रोटीन सामग्री आदि है। अच्छा मछली आहार प्रबंधन पालन की लागत को कम कर सकता है और मछली के स्वस्थ विकास को सुनिश्चित कर सकता है। वजन की मात्रा में कमी, गुणवत्ता हानि, स्वास्थ्य जोखिम और आर्थिक नुकसान से बचने के लिए उचित भंडारण आवश्यक है।

**सामग्री और आहार का भंडारण–**

भंडारण करते समय प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ता है:

1. कीड़े
2. कृतक और पक्षी
3. सूक्ष्म जीव
4. फीड स्टफ में खराब होने वाले बदलाव

**कीड़े मकोडे**

कीडे ज्यादातर आहार अवयवों को खाते है और उन्हें मल, शरीर के अंगों, गंध और सूक्ष्म जीवों से दूषित करते हैं। अनाज के सबसे विनाशकारी कीड़े भृंग और पतंगे हैं, और ये पूरे आहार भण्डार को नष्ट करने में सक्षम हैं।

कीट संक्रमण द्वारा खाद्य सामग्रियों को प्रभावित करने वाले कारक अधिकांश कीट प्रजातियों की जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं:

तापमान,
सापेक्षिक आर्द्रता और
फीड घटक की नमी।

खाद्य सामग्री में उच्च नमी (16 प्रतिशत या अधिक) कीड़ो के संक्रमण को आकर्षित करती है। ये आहार को नरम बनाते है और संक्रमण के लिए अतिसंवेदनशील बनाते हैं।

**तापमान**

अधिकांश कीट की प्रजातियां उष्णकटिबंधीय हैं, लगभग 28 डिग्री सेल्सियस के इष्टतम तापमान जरुरी है।

**सापेक्षिक आर्द्रता**

कीट की वृद्धि 70 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता तक होती है। 70 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता से परे मोल्ड गठन में सेट होता है और स्थिति को जटिल करता है।

**नियंत्रण**

भारी रूप से संक्रमित सामग्री को स्टोर में नहीं लाया जाना चाहिए।

संक्रमित सामग्री, यदि स्वीकार की जाती है, तो कीट पतंगों को पूरी तरह से खत्म करने के लिए फ्यूमिगेट (जितनी जल्दी हो सके) किया जाना चाहिए।

**कृतक और पेंछी**

कृंतक (चूहे) फीड का सेवन करते हैं और इसे मलमूत्र, बाल और शवों द्वारा दूषित करते हैं। पक्षी उत्सर्जन और पंखों द्वारा फीड को दूषित करते हैं। प्रत्येक पक्षी औसतन 25 ग्राम अनाज दिन का उपभोग कर सकता है।

**सूक्ष्म जीव**

सूक्ष्म जीवों (बैक्टीरिया और फफूंद) की वृद्धि के लिए अनकूल परिस्थित जैसे कि सापेक्ष आर्द्रता 70 से 90 प्रतिशत, नमी की मात्रा (5 से 20 प्रतिशत) और तापमान 35–45 डिग्री सेल्सियस है।

संग्रहीत फीडस्टफ पर कवक के मुख्य प्रभाव हैं:

*विषय वस्तु विशेषज्ञ, मत्स्य, **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, केवीके मऊ, आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

(अं) मायकोटॉक्सिन उत्पादन,
(ब) तापमान और नमी में वृद्धि, और
(स) फफूँदी के गन्ध

**नियंत्रण**

कीट का सफल नियंत्रण।

सोडियम प्रोपियोनेट और जेंटियन वायलेट का उपयोग।

संग्रहित खाद्य सामग्री और आहार (फीडस्टफ) में होने वाले परिवर्तन अधिकांश संग्रहित फीडस्टफ में रासायनिक परिवर्तनों के कारण स्वाद और पोषक मूल्य में परिवर्तन होते हैं। प्रमुख होने वाले परिवर्तन हैं:

वासित होना (रैंसिडिटी )

पोषक तत्वों और विटामिन की कमी

प्रभावित करने वाले कारक

पर्यावरणीय कारकः परिवेश का तापमान और सापेक्ष आर्द्रता

कीड़े और सूक्ष्म जीव

रासायनिक परिवर्तन

**वासित होना (रैंसिडिटी)**–

संग्रहीत फीडस्टफ में होने वाला महत्वपूर्ण परिवर्तन, लिपिड ऑक्सीकरण है, जिसके परिणामस्वरूप होने वाली रैंसिडिटी सबसे अधिक होती है। रैंसिडिटी बदबू और विषाक्त यौगिकों को उत्पन्न करने में योगदान करते हैं।

संग्रहीत फीडस्टफ में लिपिड ऑक्सीकरण की दर को बढ़ाने वाले मुख्य कारक इस प्रकार हैं:

**(अ) एंजाइमः** लिपोक्सिडेस और अन्य एंजाइमों की उपस्थिति

**(ब) हेमेटिनः** मछली और मांस के भंडारण में महत्वपूर्ण है

**(स) पेरोक्साइड्सः** लिपिड के ऑक्सीकरण को उत्प्रेरित करता है

**(द) प्रकाशः** अल्ट्रा वायलेट प्रकाश फोटोलिसिस में शामिल होता है

(3) उच्च तापमानः उच्च भंडारण तापमान लिपिड ऑक्सीकरण की दर को बढ़ाता है।

**नियंत्रण**

एंटी–ऑक्सीडेंट को मिलाकर लिपिड ऑक्सीकरण को रोका जा सकता है। दो आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले एंटी–ऑक्सीडेंट एथोकक्सीक्विन और ब्यूटाइल हाइड्रॉक्सिटोलुइन हैं जो ऑक्सीकरण प्रक्रियाओं के दौरान बनने वाले मुक्त कणों को रोकते हैं। अनाज के दानों में प्राकृतिक एंटी–ऑक्सीडेंट (जैसे टोकोफेरॉल) की प्रभावी मात्रा होती है, जो कि उनके लिपिड पदार्थों में काफी स्थिरता प्रदान करते हैं।

**भण्डारण की अवधि**

मछली का आहार खराब होने वाले पोषक तत्वों से बना होता है इसलिए भंडारण की अवधि न्यूनतम रखी जानी चाहिए और पर्याप्त परिस्थितियों में भण्डारण करना चाहिए। आहार (फीड) संग्रहण अवधि कुछ घंटों से लेकर छह महीने तक हो सकती है। कम नमी वाले शाकाहारी फीड और ड्राई पेलेट फीड को ढकी हुई ठंडी सूखी जगह पर भण्डारण (स्टोर) करने पर दो से तीन महीने तक रखा जा सकता है। –20 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान पर संग्रहीत होने पर उच्च नमी वाली कचरा मछली आहार और नम पेलेट फीड लगभग एक हक तक रखा जा सकता है, अन्यथा उन्हें खरीद के तुरंत बाद इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

आहार भण्डारण की आवश्यकताएं

उच्च तापमान, आर्द्रता, नमी, कीड़े और कृन्तकों के खिलाफ संरक्षण।

फर्श, दीवारों की सतह, प्रभावी रूप से नमी रहित होना चाहिए, और फीड वाले बैग हमेशा लकड़ी के पट्टलो पर संग्रहित किए जाने चाहिए।

आदर्श रूप से, नम व अर्ध–नम राशन को प्रशीतन के तहत संग्रहीत किया जाना चाहिए या विटामिन के नुकसान से बचने के लिए उसी दिन उपयोग किया जाता है।

उच्च तापमान और प्रत्यक्ष सूर्य के प्रकाश से बचने के लिए, सूखा हवादार स्थितियों के तहत सूखे पेलेटेड फीड को संग्रहित किया जाना चाहिए।

**वसा और तेल का भण्डारण**

वनस्पति तेल के कंटेनरों को केवल एक वर्ष तक

(शेष पृष्ठ 28 पर)

# स्वस्थ पशु-अधिक दुग्ध उत्पादन का आधार

एस0एन0 सिंह'* एवं ओ०पी० वर्मा**

पशुपालन व्यवसाय से अधिक लाभ पाने के लिए आवश्यक है कि पशु स्वस्थ रहकर उत्पादन की निरन्तरता को बनायें रखें तमी भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में पशुपालन अपने योगदान की अहम भुमिका में बृद्धि कर निरन्तरता कायम रख सकता है। उत्कृष्ट पशुपालन देश की उन्नति में असाधारण मूमिका निमा सकता है। अच्छा पशुपालन तभी सम्भव है जब पशुओं की देखभाल अर्थात प्रबन्धन ठीक प्रकार हो जिससे वह स्वस्थ रहे और अधिक से अधिक उत्पादन कर सके। पशुओं के स्वास्थ्य प्रबन्धन में उनकी देख–रेख जन्म से ही शुरू हो जाती है और जो बच्चा स्वस्थ रहता है वही भविष्य का स्वस्थ वयस्क (गाय, भैस) बन सकता है। प्रायः लगभग 20 प्रतिशत नवजात पशुओं की मृत्यु तीन माह की उम्र तक हो जाती है, साथ ही अनुचित देखभाल के कारण 20–25 प्रतिशत पशु बच्चों का विकास स्वस्थ वयस्क के रूप में नही हो पाता है। अतः पशु बच्चों का स्वस्थ प्रबन्धन अति आवश्यक

**जन्मोपरान्त पशु बच्चों का स्वास्थ्य प्रबन्धन :–**

नदजात बच्चों के जन्मोपरान्त सर्वप्रथम मुंह और नथुनों की सफाई ठीक प्रकार से करनी चाहिए जिससे नवजात को श्वसन व माँ के दूध ग्रहण में कठिनाई न हो। श्वसन में कठिनाई से बच्चों की मृत्यु भी हो सकती है। बच्चों को सांस लेने में तकलीफ हो तो पिछली दोनो टागों को पकडकर उल्टा लटकाने से नाक में भरा श्लेष्मीय पदार्थ निकल जाता है और श्वसन प्रक्रिया सामान्य हो जाती है। नवजात बच्चे के शरीर को रगड़ कर साफ कपड़े से पोंछना अति आवश्यक है। वैसे सामान्यतयः यह कार्य मां ही चाटकर करती है। अगर नवजात की नाभि रज्जू मॉ से जुडी है तो उसे 10 सेमी० की दूरी पर दो जगह साफ विसंक्रमित धागा बॉधकर बीच से काट देना चाहिए तथा कटी जगह पर कोई भी एंटीसेप्टिक लगा देना चाहिए।

जन्म के 8 घंटे के अन्दर नवजात पशु को खीस पिला दें क्योंकि वह पशु को सम्पूर्ण जीवन के लिए रोग रोधक क्षमता प्रदान करती है। कुछ पशुपालक जेर गिरने का इन्तजर करते हैं किन्तु यदि जेर न भी गिरे तो भी खीस पिलाना अत्यन्त आवश्यक है। जेर न गिरने पर पशु को 40 मि०ली० कैल्शियम युक्त टॉनिक पिलाकर बच्चे को खीस पिला देना चाहिए। प्रत्येक नवजात बच्चे को उसके शरीर के अनुमानित भार का /0 भाग भार के बराबर खीस प्रतिदिन और बाद में इतना ही दूध प्रतिदिन और पिलाना चाहिए जब तक कि पशु चारा न खाने लगे। नवजात पशु को चारे पर धीरे–घीरे लाना चाहिए तथा चारा भी शरीर भार के 1 /40 भाग के बराबर प्रतिदिन जीवन पर्यन्त देना चाहिए। चारे का भार के अनुसार तीन भाग हरा–चारा तथा एक भाग सूखा चारा होना चाहिए।

नवजात पशु जन्म के चार से आठ घन्टे के अन्दर यदि मलत्याग न करें तो उसे 10 मिली0 सरसों या अरंडी का तेल या आधा चम्मच खाने वाला सोडा 500 मि०ली० गुनगुने पानी में मिलाकर पिला देने से मल त्याग हो जाता है। 7–10 दिन का होने पर अन्तः कूमिनाशक हेतु एक चम्मच (5 मि0ली0) पिपराजिन दवा पिलानी चाहिए। एक माह की उम्र पर 40 मि0ली0 (2 चम्मच) पिपराजिन पिला देना चाहिए। इससे नवजात पशुओं की मृत्यु दर कम हो जायेगी और पशु वर्क, बना रहेगा। भैंस के बच्चों में 7–11 दिन तथों गाय के बच्चों में 14–24 दिन की आयु पर सींग रोधन पशु चिकित्सक की सहायता से कराना चाहिए ।

नवजात बच्चों के बाड़े को 0.5 प्रतिशत मैलाथियान के घोल का छिड़काव कर किलनी 4 मक्खी प्रकोप से

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुविज्ञान), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, सिद्धार्थनगर
आ.न.दे.कृषि एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या

बचाया जा सकता है बरसात तथा गर्मी के दिनों में किलनी का प्रकोप अधिक होने पर प्रत्येक 45 दिन के अन्तराल पर ब्यूटाक्स/क्यूटाक्स/क्लीनर नामक दवा का 40 मि०ली0 (2 चम्मच) 5 ली० पानी में घोलकर पशु के शरीर पर सूती कपड़े की सहायता से लगाना चाहिए तथा शेष घोल 52 के बाड़े की दीवारों, फर्श व दरवाजे आदि पर छिड़क देना चाहिए इससे किलनी आदि का प्रकोप कम हो जाता है। 4 से 3 माह की उम्र पर एक टीका खुरपका मुहपका रोग का अवश्य लगवा देना चाहिए तथा 6 माह की उम्र पर ब्रुसेलला (गर्भपात) रोग रोधक टीका बछिया,/ पड़िया को लगवाना चाहिए।

**ओसरों एवं सम उम्र बछड़े का स्वास्थ्य प्रबन्धन :–**

छः माह की उम्र के बाद से 24 माह की मादा ओसर एवं समान आयु के बछड़ों का रखरखाव सावधानी से करना चाहिए। यह वह आयु है जब अधिक उत्पादकता की नीव रखी जाती है। इस उम्र के प्रत्येक पशु को सूखा एवं हरा–चारा के साथ–साथ 1.0 किलो सन्तुलित दाना–मिश्रण अवश्य देना चाहिए। पशु के ताजा व स्वच्छ आहार देना चाहिए ऐसा करने से ओसर समय पर तैयार होकर गर्मी में आयेगी तथा गाभिन हो जायेगी। बछड़ा भी गर्भाधान करने हेतु समय पर तैयार हो जायेगा। लगभग 30 माह की आयु पर बछड़ों में सर्वाधिक प्रजनन क्षमता होती है।

प्रत्येक पशु को फरवरी एवं सितम्बर के माह में वर्ष में दो बार अंतः कृमिनाशक दवा देनी चाहिए तथा अप्रैल–अगस्त के माह में खुरपका–मुँहपका रोगरोधक टीका अवश्य लगवाना चाहिए। इसके साथ ही मई–जून में गलाघोटू एवं लंगड़िया रोग से बचाव हेज्मू टीका भी लगवाना चाहिए। उपरोक्त में से कोई भी रोग पशु को होने पर पशुपालन हानि का व्यवसाय हो जाता है और पशु की मृत्यु होने पर पशुपालक को अत्यधिक नुकसान होता है जिसकी भरपाई होना कठिन हो जाता है।

पशुओं को गर्मी में लू से बचाने हेतु दिन में पशुशाला की खिडकियाँ तथा दरवाजों पर मोटा पर्दा लगाकर तथा ठंड के दिनों में सायं से प्रातः सूर्य निकलने तक पशु को पशुशाला के अन्दर ही रखें। ठंड के दिनों में पशु के आहार में विटामिन–ए एवं गुड़ की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। गर्मियों में पशुओं को निरन्तर स्वच्छ एवं ताजा पानी पिलाते रहना चाहिए। इस प्रकार पशु की विपरीत मौसम के प्रभाव से रक्षा हो जायेगी।

गाभिन पशु का स्वास्थ्य प्रबन्धनः–

विदेशी अथवा संकर नस्ल की बछिया को 48 माह तथा देशी को 24 माह की आयु में गाभिन होने हेतु तैयार हो जाना चाहिए। प्रथम 4–2 गर्मी को छोड़ने के बाद पशु को गाभिन करा देना चाहिए। इस आयु पर गर्मी की पहचान एवं गर्भाधान के उचित 'सकथ की पहचान कठिन होती है। अतः पशु को नियमित रूप से जांचते रहना चाहिए। गर्मी में आया पशु तओ चैन रहता है, आहार कम ग्रहण करता है, दूसरे पशुओं पर चढ़ने का प्रयास करता है, बार–बार पेशाब करता है, योनि पर हल्की सूजन हो जाती है, योनि से चिपचिपा तरल पदार्थ का स्राव होता है तथा बार–बार रंभाता है। कुछ पशु रंभाते नही है। गर्मी में आने के लगभग 48 घंटे बाद पशु को गाभिन कराना चाहिए।

गाभिन पशु को संतुलित आहार तथा राशन (दाना मिश्रण) में अतिरिक्त दलहनी पदार्थ देना चाहिए। दाल आदि का छिलका या चूनी 40–45 प्रतिशत तक बढ़ा देना नहिए, जो गर्भस्थ बच्चे के बढ़वार क्रम में सहायक होता है। गाभिन पशु को कृमिनाशक दवा नहीं देना चाहिए। गाभिन पशु के राशन (दाना मिश्रण) में खनिज लवण की मात्रा भी 3 प्रतिशत के आसपास कर देनी चाहिए। ब्याने में जब 45–20 दिन रह जाये तो राशन (दाना मिश्रण) की मात्रा कम कर देनी चाहिए तथा यदि खनिज

**यह या कैल्शियम का टॉनिक अतिरिक्त रूप में दे रहे हो तो उसे भी बन्द कर देना चाहिए।** –

गाभिन पशु को अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए तथा जब ब्याने में 5–7 दिन रह जाये तो एक अलग कमरें में रखना चाहिए जो अत्यन्त स्वच्छ हो तथा कुत्ते

और बिल्लियों की पहुँच से दूर हो। ब्याते पशु को शांत वातावरण प्रदान करें तथा ब्याने के बाद 400 मि0ली0 यूटरोटोन आदि जेर गिराने वाली दवा एवं 400 मि0ली० कैल्शियम टॉनिक दवा पिला दें। बच्चे के चारों ओर लगी झिल्ली को साफ कर दूर जमीन में . दबा देना उपयुक्त होता है। मां को बच्चे के चाटने के लिए पर्याप्त अवसर देना चाहिए तथा न चाटने वाले पशु को प्रेरित करने हेतु बच्चे के शरीर पर गुड का चूरा लगाना चाहिए। चाटने से पशु के शरीर में खून का दौरा बढ़ जायेगा तथा बच्चा शीघ्र ही खड़ा हो जायेगा।

**दुधारू पशुओं का स्वास्थ्य प्रबन्धनः–**

दुधारू पशु को भी अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए। यदि पशु को पशुघर में रखना है तो एक पशु को 30 (5–6' वर्गफुट का स्थान चाहिए। पशु को ताजा चारा, नमीमुक्त दाना, स्वच्छ पानी, ताजी हवा, दिन में सूर्य की रोशनी तथा मल–मूत्र के नियमित निकास की व्यवस्था होनी चाहिए। पशु आवास को दिन में 2–3 बार सॉफ – करना चाहिए तथा एक बार फिनायल आदि से विसंक्रमित भी करना चाहिए। 5 लीटर तक दूध देने वाले पशु को दिन में दो बार तथा इससे ज्यादा दूध देने वाले पशु को तीन बार दुहना चाहिए। दूध देने वाली गाय को आहार में प्रत्येक तीन लीटर पर एक किलो अतिरिक्त राशन (दाना मिश्रण) देना चाहिए अर्थात 6 लीटर पर दो किलो तथा 9 लीटर पर तीन किलो भैंस में प्रत्येक ढाई लीटर पर 4.0 किलो दाना मिश्रण खिलाना चाहिये।

दूध दुहने से पूर्व तथा बाद में साफ पानी से थनों को धोना चाहिए। दुहने के बाद सरसों का तेल लगाने से थन फटते नही हैं। पशु को चारा खाते समय पक्के फर्श पर तथा शेष समय कच्चे में तथा गाभिन पशु को ज्यादातर समय कच्चे फर्श पर रखने से खुर ठीक रहते है तथा पशु लंगड़ाता नही है।

पशुपालन व्यवसाय से निरन्तर आय प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पशुपालक भाई उपरोक्त सुझावों पर अमल करते हुए यदि अपने पशुओं का रखरखाव करते है तो निश्चित ही वे अपने पशुओं को स्वस्थ रखकर उनसे, उनकी क्षमता के अनुरूप उत्पादन प्राप्त कर, दुग्ध व्यवसाय से अधिक आय अर्जित कर सकते है।

---

(पृष्ठ 35 का शेष)

रखना चाहिए। हालांकि, एक बार खोला और हवा के संपर्क में आने के बाद, तेल ऑक्सीकरण करना शुरू कर देता है।

नाइट्रोजन वातावरण में या बहुत कम तापमान पर संग्रहित करें। वनस्पति तेल को उपयोग से कुछ समय पहले ही आहार में एंटीऑक्सीडेंट जैसे कि विटामिन ई, टोकोफेरॉल, सिंथेटिक एथोक्सीक्विन या तृतीयक ब्यूटाइल हाइड्रोक्विनोन (टीबीएचक्यू) को मिलाना चाहिए।

**मिश्रित फीड का भण्डारण**

फीड की नमी 12 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। फीड को बंद थैलियों में कृंतक और कीट रहित सूखी जगह में रखना चाहिए।

फीड बनाते समय एंटीऑक्सिडेंट मिलाना चाहिए।

यदि कोई एंटीऑक्सिडेंट नहीं मिलाया जाता है, तो सीमित समय के लिए ठंडे स्थान पर रखना चाहिए।

विटामिन सी (एस्कॉर्बिक एसिड) केवल कुछ दिनों के लिए स्थिर होता है, अतः व्यावसायिक रूप से उपलब्ध एस्कॉर्बिक एसिड फॉस्फेट, विटामिन सी का स्थिर रूप है, उपयोग करना चाहिए ।

सभी विटामिन प्रदान करने के लिए आहार में विटामिन प्रीमिक्स शामिल करें।

**निष्कर्ष**

भंडारण एक महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि उत्पादित कुल फीड को भण्डारित या पूरी तरह से बेचा नहीं जा सकता है। फिश फीड की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए उचित भंडारण की स्थिति और अच्छी हैंडलिंग महत्वपूर्ण है। अच्छी गुणवत्ता वाली मछली फीड बेहतर विकास उत्तरजीविता प्रदान करती है और बदले में किसानों को बेहतर लाभ प्रदान करती है।

# जुलाई माह में किसान भाई क्या करें

## मृदा एवं उर्वरक प्रबंध
## प्रो० आर.आर. सिंह, मृदा विज्ञान

1. सुगन्धित धान की रोपाई के लिये खेत की अच्छी तरह तैयारी कर लें व लगाने के बाद नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा पाटा देने से पहले खेत में डालें।
2. एक स्थान पर 1–2 पौध, पौध से पौध 10 सेमी0 तथा लाइन से लाइन 20 सेमी0 की दूरी पर रोपाई करें। रोपाई के एक सप्ताह बाद रिक्त स्थानों को उसी प्रजाति के पौध से भरें।
3. यूरिया की टाप ड्रेसिंग के पूर्व खेत से पानी निकाल दें। नमी अधिक होने या जल भराव की दशा में यूरिया को दोगुनी मिट्टी में एक चैथाई गोबर की खाद के साथ मिलाकर गोली बनाकर कर प्रयोग करें अथवा नीम कोटेड यूरिया का प्रयोग करें। सूखे की दशा में यदि नत्रजन की आवश्यकता हो तो दो प्रतिशत यूरिया घोल का पर्णीय छिड़काव करें।
4. रोपाई के 3–4 दिन के अंदर खरपतवार नाशी दवा सैटर्न 50 ईसी 3 लीटर की दर से चौड़ी पत्ती के लिये 2–4 डी सोडियम साल्ट का 400–500 ग्राम (सक्रिय) अथवा ब्यूटाक्लोर 50 ईसी 3 से 4 ली0 प्रति हे0 600–800 ली0 पानी में घोल बनाकर फ्लेटफैन नाजेल से पर्णीय छिड़काव करें।
5. मक्का की संकर संकुल प्रजातियों के लिये क्रमशः 120:60:60 व 80:40:40 तथा देशी प्रजातियों के लिये 60:30:30 किग्रा0 नत्रजन की आधी तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूडों में बीज के नीचे डालें।
6. संकर व संकुल मक्क को 60 सेमी की दूरी तथा देशी प्रजाति को 45 सेमी की दूरी पर लाइन बनाकर बुवाई करें।
7. जायद उर्द व मूंग की तुड़ाई करके इसे मिट्टी में मिलाकर लेव लगाकर धान की रोपाई यथाशीघ्र सुनिश्चित करें।
8. अगेती अरहर की किस्में शरद–11, टा–21, उपास आदि की बुवाई 30–45 सेमी की दूरी पर करें। अरहर के साथ उर्द, मूंग, सोयाबीन, तिल आदि की सहफसली खेती करें।
9. मूंगफली जी की उन्नत किस्मों की बुवाई पंक्ति से पंक्ति 30–45 सेमी की दूरी पर बीज शोधन के बाद करें।
10. जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में फसल लगाने से पूर्व खेत की तैयारी के समय 25 किग्रा प्रति हे0 की दर से जिंक सल्फेट का प्रयोग करें

## फसलों में
## डॉ. सौरभ वर्मा
## विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य)

1. धान की सिंचित दशा में अधिक उपज देने वाले प्रजातियों के लिए 20:50:50 किग्रा एवं स्थानीय प्रजातियों के लिए 60:30:30 किग्रा प्रति हेक्टेयर नत्रजन की आधी एवं फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई के पूर्व दें।
2. धान की असिंचित दशा में 60:40:30 किग्रा प्रति हेक्टेयर नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश बुवाई के समय बीज के नीचे कूड़ों में प्रयोग करें।
3. रोपाई के 3–4 दिन बाद खर–पतवारनाशी दवा सैटर्न 50 ई सी. 3 लीटर की दर से या अन्य खर–पतवारनाशी जैसे 2, 4 डी. सोडियम साल्ट का 400–500 ग्राम (सक्रिय रसायन) अथवा ब्यूटोक्लोर 50 ई सी. 3 से 4 लीटर प्रति हेक्टेयर 600–800 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
4. उर्द, मूँग के फलियों की तोड़ाई अवश्य कर लें। अन्तिम तोड़ाई के बाद मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर दें।
5. तिल की संस्तुत प्रजातियों की बुवाई 45 सेमी पंक्ति की दूरी पर करें।

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार विषय वस्तु विशेषज्ञ, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

6. जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में धान की फसल पर 5 किग्रा जिंक सल्फेट को 2 प्रतिशत यूरिया के साथ अथवा 25 किग्रा बुझे हुये चूने के साथ पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

7. मक्का में खरपतवारों को नष्ट करने के लिये सीमाजीन 50 प्रतिशत अथवा एट्राजीन 50 प्रतिशत की 2 किग्रा मात्रा को 800 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के दूसरे या तीसरे दिन अंकुरण से पूर्व प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

## सब्जी एवं उद्यान में
## डॉ० शशांक शेखर सिंह
## विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान)

1. वर्षाकालीन प्याज की किस्म एग्रीफाउन्ड डार्क रेड या एन.–22 की 8–0 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर की दर से नर्सरी में बुवाई करें। अच्छे जल निकास के लिये क्यारी 5 सेमी जमीन से ऊँची बनायें।

2. अगेती फूलगोभी पूसा दीपाली की पौध इस माह के प्रथम सप्ताह में डालें। 250 ग्राम बीज एक एकड़ के लिये पर्याप्त होगा।

3. अगेती टमाटर एच एस –0 ।, पूसा रूबी तथा पूसा अर्ली प्रजातियों की पौध इस माह में डालें। बीज की मात्रा प्रति एकड़ गोभी के समान रखें।

4. लम्बे बैंगन पी एच –4 , पन्त सम्राट तथा गोल बैंगन पन्त ऋतुराज एवं टा–3 की पौध डाल सकते हैं।

5. लता वाली सब्जियों जैसे तरोई, नेनुआ, लौकी, बारहमासी करेला की बुवाई कर सकते हैं। मचान बनाना आवश्यक है।

6. भिन्डी , लोबिया आदि की बुवाई कर सकते हैं।

7. आम, अमरूद, नींबू पपीता, बेर, बेल एवं आँवला आदि के बाग लगाने के लिये उचित दूरी पर रेखांकन करके गड्ढों की खुदाई एवं भराई का कार्य पूर्ण कर लें।

8. बेर की कटाई एवं छटाई का कार्य सम्पन्न कर लें तथा खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें।

9. यदि किसी पौधे में मूलवृंत से फुटाव आ रहा हो तो उसे तत्काल निकाल दें और यदि सम्भव हो तो नये रोपित पौधों को सहारा दें।

10. सभी फल वृक्षों के पास 5–20 सेमी तक मिट्टी चढ़ा दें ताकि तने के पास पानी न लगे।

## पौध संरक्षण में
## डॉ० वी0पी० चौधरी एवं डॉ0 पंकज कुमार
## विषय वस्तु विशेषज्ञ (फसल सुरक्षा)

1. धान की नर्सरी में खैरा या सफेदा रोग दिखाई दे तो खैरा रोग का नियन्त्रण 5 किग्रा जिंक सल्फेट. 25 प्रतिशत यूरिया या 25 किग्रा बुझा हुआ चूना से तथा सफेदा रोग का नियन्त्रण 25 किग्रा फेरस सल्फेट. 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव प्रति हेक्टेयर के हिसाब से करें।

2. धान की बुवाई के तुरन्त बाद खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु ब्यूटाक्लोर 50 ई सी. 3–4 लीटर 600–800 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 3–4 दिन के अन्दर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

3. बोई जाने वाली सब्जियों का बीज शोधन (2.5 ग्राम डाईथेन एम–45 प्रति किग्रा) करने के बाद बोयें।

4. बेल वाली सब्जियों पर फल मक्खी का नियन्त्रण 5 लीटर मैलाथियान प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

5. खर्रा रोग के नियन्त्रण के लिये घुलनशील गंधक 03 प्रतिशत घोल कर छिड़काव करें।

## पशुपालन में
## डॉ. सुरेन्द्र सिंह
## सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

1. जो किसान भाई अभी तक मीठी सूडान, एम.पी. चरी, बाजरा तथा लोबिया की बुवाई न किये हों, इस माह के अन्त तक अवश्य कर दें।

2. दुधारू पशुओं को पीने के लिये स्वच्छ व ताजा पानी दिन में कई बार दिया जाय। गर्मी से बचाव हेतु दोपहर के पानी में गुड़ अथवा इलेक्ट्राल दें।

3. पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु पशुओं को संतुलित आहार (रातिब) अवश्य दिया जाय।
4. जिन पशुओं को अभी तक गलाघोटू बीमारी का टीका न लगा हो, उन्हें टीकाकरण करा दें।
5. अण्डा तथा मांस उत्पादन करने वाली मुर्गियों से अनुत्पादक मुर्गियों की छटनी कर दें।
6. जो भेड़, बकरी गर्मी में आयी हों उन्हें गर्भित करा दिया जाय।
7. दुधारू पशुओं को उनके उत्पादन क्षमता के अनुसार सन्तुलित आहार दें, जिसमें भैंस को दो से ढाई लीटर दूध देने पर तथा गाय को तीन लीटर दूध देने पर प्रति किग्रा पशु आहार देना आवश्यक है।
8. मुर्गियों को जानलेवा बीमारियों से बचाव हेतु उनके उम्र के अनुसार टीकाकरण कराना चाहिए , जिसमें रानीखेत बीमारी से बचाव हेतु एक से पाँच दिनों के बीच रानीखेत एफ–। तथा 6 से 8 सप्ताह के उम्र पर एफ–2 का टीका लगवाना चाहिए।

# प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

**प्रश्न : मोथा घास का निदान कैसे करें?**
(श्री उमेश चन्द्र यादव, रूदौली, जनपद–अयोध्या)

**उत्तरः** मोथा घास के नियन्त्रण के लिये खेत की ग्रीष्मकालीन 2–3 बार जुताई करें। खरीफ में धान उगाने के लिये लेवा करके अकुरित बीज बोये अथवा पौध रोपें। धान, मक्का, गन्ना, ज्वार तथा बाजरा की शुद्ध फसल मे संस्तुति के अनुसार 2 4–डी शाकनाशी का प्रयोग करें। वर्षा और ग्रीष्मकाल में सघन उगने वाली और जल्दी बढ़ने वाली फसलें लगाना अच्छा होगा। प्रत्येक फसल में बुवाई के बाद 5–20 दिन की अवस्था पर पहली निराई तथा इतने ही अन्तर पर दूसरी निराई अवश्य करें। बाद की निराई आवश्यकतानुसार करें। निराई–गुड़ाई के समय इस घास को समूल निकालकर नष्ट कर दें। बिरल या अधिक फासले पर लगाई जाने वाली फसलो में गन्ने की पत्ती, पुआल अथवा जलकुम्भी बिछाने से बहुत अच्छे परिणाम मिले हैं। गेहूँ, धान आदि फसल की एक माह की अवस्था पर वासाग्रान 2 लीटर प्रति हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़कने से मोथा के साथ–साथ अन्य दूसरी घासे भी नष्ट हो जाती है।

**प्रश्न : धान की फसल में दीमक लग जाते हैं, कृपया इसके रोकथाम के उपाय बतायें?**
(श्री संतोष कुमार, ग्राम–अमानीगंज, जनपद–अयोध्या)

**उत्तरः** दीमक जड़ एवं तने को खाकर सुखा देते हैं। प्रकोपित सूखे पौधों को आसानी से उखाड़ा जा सकता है। फसल बोने से पूर्व ऐसे क्षेत्रों में कच्चे गोबर की खाद का प्रयोग न करें, फसल के अवशेष को नष्ट कर दें। प्रकोप होने पर सिंचाई के पानी के साथ क्लोरपाइरीफास 20 ई सी 25 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

**प्रश्न : मुर्गीपालन प्रारम्भ करना चाहते हैं, कैसे करें?**
(श्री गिरिराज वर्मा, बीकपुर, जनपद–अयोध्या)

**उत्तरः** मुर्गीपालन दो प्रकार से किया जाता है एक अण्डा उत्पादन के लिये, दूसरा मांस (ब्रायलर) उत्पादन। अण्डा उत्पादन हेतु सबसे अच्छी नस्ल ह्वाइट लेगहार्न पायी जाती है जो वर्ष भर में लगभग 280–300 अण्डे का उत्पादन करती है। इसके लिये बिछावन पद्धति और केज में मुर्गियों को पाला जाता है। दूसरा ब्रायलर पालन जिसे पूर्वांचल में बहुत से किसानों द्वारा किया जा रहा है। यह बहुत कम समय में अर्थात 35–40 दिन में 800–2000 ग्राम वजन तक हो जाता है जिसे बाजार के आवश्यकता अनुसार बेच दिया जाता है। ब्रायलर पालन के लिये जहाँ मुर्गी घर बनाना है वह जगह ऊँचा होना चाहिये, पानी न रूकता हो, बाजार के नकदीक तथा आने जाने के लिये सड़क होना आवश्यक है। एक ब्रायलर के लिये एक वर्गफुट स्थान की जरूरत पड़ती है जिसे अच्छे प्रबन्धन एवं सन्तुलित आहार खिलाकर कम समय में अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अधिक जानकारी के लिये आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज के कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र पर आकर सम्पर्क कर सकते हैं।

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

# प्रसार निदेशालय

## आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

## कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

## के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य रु. |
|---|---|
| आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध | 20.00 |
| जिमीकन्द की खेती | 15.00 |
| मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता | 12.00 |
| किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक | 50.00 |
| फसल उत्पादन तकनीक | 35.00 |
| जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल | 10.00 |
| फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार | 50.00 |
| गन्ने की आधुनिक खेती | 15.00 |
| जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक | 20.00 |
| केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन | 10.00 |
| व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन | 20.00 |
| फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन | 25.00 |
| आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्ज़ियों की उत्पादन तकनीक | 25.00 |
| गृहणियों के लिए बेकिंग कला | 25.00 |
| स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व | 20.00 |
| गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार | 20.00 |
| मछली पालन | 40.00 |
| फसल अवशेष प्रबंधन | 30.00 |

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
**प्रसार निदेशालय**
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से डॉ. आर.आर. सिंह अपर निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित